चर्चा सागरके विषय पर संक्षिप्त वक्तव्य

समस्त दिगम्बर जैन समाजके कर्णधार प्रमुख नेतागण व दि० जैनधर्म्मज्ञाता विद्वद्गण व 'धनिक श्रीमान्' व 'सर्वसाधारण भ्रातृगण' 'वयोवृद्ध' व नवयुवक महोदय ! आप महानुभावोंके प्रति मेरा नम्रनिवेदन है कि धर्म्मके विषयमें तथा धर्मकथामें सदैव विसंवादिनी कथाको छोड़ कर धर्म्मके विवादस्थ विषयोंमें वीतराग कथासे निर्णय करना चाहिये। जहांपर निष्पक्ष ऊहापोहसे निर्णय होता है वहां बड़ा आनन्द आता है और पदार्थ मिलता है। विजिगीषु कथामें कषायांशसे एक दूसरेके पक्षको गिरानेके अभिप्रायसे निर्णीत पदार्थ भी नहीं मिलता और परिणामोंकी कलुषतासे एक दूसरेको बुरा भला कहते हुये ज्ञान आवरणित होता है और ज्ञानके विकाशका आनन्द नहीं आता। कारण आत्मा ज्ञानानन्दमयी है और कषाय आत्माके गुणोंको घातता है वहां ज्ञानका विकाश कैसा और ज्ञानका आनन्द कहां ! इसलिये इस विषयपर कुछ लिखनेके पहले मैं सब महानुभावोंसे प्रार्थना किये लेता हूं। आप महानुभाव ! न तो मेरेपर रोषावेश करेंगे और न मुझे पक्षपात दृष्टिसे देखेंगे। मैं अपनी समझमें निष्पक्ष निर्णय-बुद्धिसे आप लोगोंके समक्षमें चर्चासागर ग्रन्थके विषयभूत पदार्थ व उठे हुए प्रश्नोत्तरोंके निर्णयार्थ निजी विचार उपस्थित करता

हूं। यदि युक्तियुक्त और शास्त्रसम्मत मेरे विचार हों तो ग्रहण करना और आवरण कर्मके उदयसे व प्रमादसे भूल हो तो क्षमा करना।

चर्चासागरका पहला विवादस्थ विषय नीराजनामें गोबर लेनेका है तथा एक सीढ़ी और चढ़कर भगवानके अभिषेकमें गोबर और गोमूत्रके ग्रहणका है। अब उभय पक्षमें श्रीमान् रतनलाल झांझरी आदिक एक पक्षके भाई इसको असंगत दिखलाते हुये खण्डन करते हैं, दूसरी ओर श्रीमान् पं० मक्खनलालजी न्यायालंकार शास्त्री आदिक पंडितमण्डली समर्थन करती है शास्त्रीय-प्रमाण उपस्थित करती है, अब यहांपर इस विषयपर विवाद होनेका दोष किसका समझा जाय, किसीका भी नहीं; किन्तु एक तो चर्चासागरकी लेखनशैली अच्छी नहीं, दूसरी बात बहुतसे विषयोंमें उभय पक्षकी अनभिज्ञता (अजानकारी) है सबही विद्वान् सब विषयोंके जानकार नहीं हुआ करते, नहीं तो सर्वज्ञ न हो जांय, हम आपमें असर्वज्ञता दोष है वही तो छीछालादार (अव्वढव्वे) असंगत काम कराती है और कषायांश किसीके हो तो वह उन्हींके पास रहे। हमें यहां उसका विवेचन नहीं करना है और हम भी सर्वज्ञ नहीं। हम भी विचाराई अपने विचारोंको विद्वानोंके समक्ष उपस्थित करते हैं। कसोटी ज्यों कसकरपे पानीमें क्षीरको हँस ज्यों मेरे योग्य विचारोंको ग्रहण करना और अयोग्य विचारोंको हेय जान छोड़ देना भव्य पुरुषोंका कर्तव्य है। अब प्रकृत विषय पर विवेचन करते हैं।

नीराजना नाम नीरस्य शान्त्युदकस्य अत्र क्षेपो यस्यां क्रियायां सा नीराजना—भावे ल्युट्। नीराजनाका अर्थ यह है कि जिस क्रियामें विघ्नशक्ति व पापशान्तिके लिये शान्तिधारा छोड़ी जाय। भगवान्के सामने जो आरती करते हुवे शान्तिधारा छोड़ी जाती है वह आरती करनेवाला अपने कर्म व पाप अथवा विघ्न शान्तिके लिये शान्तिधारा छोड़ता है। आरती उतारनेके पीछे जलधारा छोड़ता है इसीको नीराजना कहते हैं। परन्तु लोग बिना समझे केवल दीपक व अर्घसे आरती कर लेते हैं और पीछे जल नहीं छोड़ते हैं यह बिनसमझसे अधूरी क्रिया है। परन्तु इसी क्रिया-का दृश्य आप जहां (बींदबींदनी) दुलहा दुलहिनका ब्याह हो चुकता है तब विवाह वेदीपर स्त्रियां उन वर-वधूका आरता उतारा करती हैं। पीछे देवस्थापित घरमें या मन्दिरजीमें या निजी घरमें लिवा जाती हैं। उस समय आरता दीपक संजोय कर करती हैं और आरतेकी थालीके दोनों तरफ जल दुलहा दुलहिनके सामने छोड़ती हैं। वहांपर लड़के लड़कीको कोई प्रकारकी नजर व दृष्टि न लगे इस हेतु उस थालीमें दीपक तथा धनियां मूंग रोली चावल सुपारीके साथ गोबर भस्मपिंड आदि भी रख लेती हैं। देशभेदसे कोई जगह गोबर भस्मपिंड न रखती हों तो यह भी होता है परन्तु व्यावहारिक आरतीकी थालीमें गोबर भस्म-पिंड रखनेका वास्ता नजर दृष्टि आदिसे उस समय सुसज्जित अपूर्व सौन्दर्यके कारण बींदबींदनीको परदृष्ट्यादिसे कोई विघ्न उपस्थित न हो जाय इसके दूर करनेके लिये गोबर

आदि चीजोंको रखनेकी आवश्यकता तन्त्र है जैसे सुन्दर मकान बनाते समय लोग एक काले कपड़ेकी धजीर चीथड़ा लटका देते हैं। दृष्टि दोषसे मकान तक फट जाते हैं और तपोबलसे औषधि ऋद्धि जिनके उत्पन्न होती है उन मुनिके देखनेसे विष उतर जाता है, यह दृष्टि विषंविषा ऋद्धि है किसीके कुतपसे सामर्थ्य हो जाय तो द्वीपायन मुनिवत भस्म करदें। या मिथ्यात्वका उदय होता है। यहां कहनेका तात्पर्य यह है कि सामर्थ्य तो तपसे होता है पर विना तप भी पूर्व जन्मके संस्कारसे साधारण मनुष्योंकी भी दृष्टिमें गुण दोष होते हैं उस दोष निराकरणार्थ व्यवहारमें तन्त्र है इसी अभिप्रायके लिये संस्कारोंमें जात-कर्मादिकोंमें भी यह आरता लेते हैं अर्थात् जात कर्म जब बालक पैदा होता है तब छठवा संस्कार जात कर्म है जिसको आदिपुराणमें षष्ठी क्रिया लिखा है इसके पहिले गर्भाधान सीमन्त २ पुंसवन ३ प्रमोदादि ५ पाँच क्रियाँये हो चुकती हैं तब छठवां संस्कार जातकर्म होता है। इसीको लोग इस समय छठी कहते हैं। उसी निमित्त इन्द्रादिक देव भगवान्‌को सुमेरु पर्वत पर ले जाकर १००८ एक हजार आठ कलशोंसे स्नान करा कर इन्द्राणी भगवान्‌को दिव्य वस्त्राभूषण पहनाकर जातकर्म संस्कार भगवान्‌का किया और इन्द्राणीने पीछे नीराजना आरता किया और इन्द्रने स्तुति करते हुये कहा कि जैसे मणि तो

स्वभावसे ही पवित्र और कान्तिमान् होती है परन्तु संस्कार योगसे और भी कान्तिको पाती है उसी प्रकार आप तो स्वयमेव ही पवित्र और दीप्तिमान् हो। पर जातकर्म संस्कारसे और भी आप विशेष शोभाको रख रहे हो इत्यादि। यद्यपि नीराजनामें क्या क्या द्रव्य रखना चाहिये यह लेख आदि पुराणमें नहीं है किन्तु नीराजनाका विधान राज्याभिषेक समय श्रीजिनसेन स्वामी आदिपुराणमें लिखते हैं—

अथ निर्वर्तितस्नानं कृतनीराजनं विभुं ।
स्वभुवो भूषयामासुर्दिव्यैः स्रग्भूषणाम्बरैः॥

यह सोलहवें पर्वमें भगवान् ऋषभदेवका राज्याभिषेक जब देवोंने और राजाओंने किया उसी समय नीराजना भी की और देवोंने दिव्य वस्त्राभूषण और मालाओंसे भगवान् को आभूषित किया तथा जब भगवान् गर्भमें आये तब षट् कुमारिका और छप्पन कुमारिका देवियोंने भगवान्की माता की नीराजना की। जैसा इस बारह १२ वें पर्वमें लिखा है—

काश्चिन्नीराजयामासुरुचितैर्वलिकर्म्मभिः।
न्यास्थन्मन्त्राक्षरैः काश्चिदस्यैरक्षामुपाक्षिपन् ॥९१॥

केई देवियां संध्या समय भगवान्की माताकी उचित (बलिकर्म) पूजन क्रियासे नीराजना उतारती थीं अथवा किसीका दृष्टिदोष (नजर) न लग जाय इसलिये उचित वस्तुओंके द्वारा उतारना उतारती थीं और कोई देवियां रक्षा मन्त्रसे अभिमन्त्रितकर रक्षा बांधती थीं। यहांपर नीराजना लिखनेका तात्पर्य यह है कि (नीरा-

जना विधि) आरती उतारना गृहस्थाश्रमके समयकी संसारावस्थाके (गर्भ जन्म) समयमें ही, नीराजना करना लिखा है। आदि पुराणमें (इसीको भूतप्रज्ञापननयकी विवक्षासे आचार्य और विद्वानोंने जनसाधारण जनताके उज्ज्वल परिणाम होनेके लिये तथा पुण्य प्रकर्ष सञ्चयार्थ नित्यपूजनमें भी अभिषेकको पूजनके पहिले एक मुख्य क्रिया लिखी है) परन्तु फिर ज्ञानकल्याणकमें समवसरण समय अर्हंत अवस्थामें इसी आदिपुराणमें नीराजना विधि क्यों नहीं लिखी ? इसीसे जाना जाता है कि यह क्रिया गृहस्थाचारकी है सो व्यवहारमें अष्ट शुद्धियोंमें गोमय भी लिखा है। अब फिर यदि नजर आदि उतारनेके अभिप्रायसे आरतीकी थालीमें गोबर लिखा है तत्रानुसार प्रतिमाप्रतिष्ठाके समय गर्भ जन्म कल्याणक क्रियाओंको दिखाते हुये गर्भजन्म और राज्याभिषेकादि क्रियाओंके संस्कारोंसे उस प्रतिमाको संस्कारित करते समय उस नीराजनाको प्रतिष्ठा पाठोंमें या यशस्तिलक चम्पू आदि ग्रन्थोंमें लिखा है वह गर्भजन्म समयकी नीराजनाका कथन है व्यावहारिक क्रिया है। प्रतिष्ठापाठोंमें जो क्रियायें है वे स्थापनानिक्षेपसे प्रतिमापर गर्भजन्म तप ज्ञान निर्वाण पांचों कल्याणोंकी जो जो क्रियायें व्यावहारिक व पारमार्थिक हुई हैं उनका दिग्दर्शन कराना है। उन्हें जब ले लेना होता है। प्रतिष्ठाके समय माता गृह और माता तथा गर्भाशयमें आना आदि दिखाना होता है। यद्यपि तीर्थंकरकी माताका गर्भाशय अतिशययुक्त असाधारण बतलाया है मल मूत्रादि रहित है तथापि रज वीर्य तो होते ही हैं उसमें भी रहना

प्रतिमाका दिखाया जाता है उसी प्रकार नीराजना आदिका भी कथन है परन्तु उसी नीराजनाको अरहंत :अवस्थारूप प्रतिमाके सामने प्रज्ञापननयकी अपेक्षासे नीराजना करते हुये भी नीराजना-में परमार्थसे माने हुये अशुद्ध द्रव्य गोबरको नहीं ले सके और न अरहंत अवस्थामें नजर दूर करनेके अभिप्रायसे नीराजना की जाती है। यहांपर परमपूज्य उत्कृष्ट पूजा मात्रसे नीराजना की जाती है अभिप्रायसे भेद भी है इसलिये गर्भ जन्मादि व्यावहारिक विशेष स्थानमें लिखा हुआ गोमय वह पूजा द्रव्य नहीं कहा जाशका और न वह ग्रन्थ हो इतनेसे अप्रमाण कहा जा शका है और न उस ग्रन्थकी प्रमाणता दे कर गोबर पूजा द्रव्य ठहराया जा शका है। विना समझेकी आपसमें शिरफोड़ी है। श्रीमान् झांझरी आदिक हमारे भाई ऐसा समझकर कि गोबर ऐसी निकृष्ट चीज और भगवानके आरतेमें बड़ा अनर्थ है कहकर बकते हैं, उछलते हैं और इधर श्रीमान् पं० मक्खनलालजी आदि यह कहकर कि प्रतिष्ठा पाठादि ग्रन्थोंमें आचार्योंने लिखा है यह कैसे असङ्गत हो शका है। ये लिखेको बांचते हैं। बहुतसे भाई व पण्डित बीस पंथ तेरा-पंथका झगड़ा गाते हैं, और कोई विद्वान् ब्राह्मणोंने मिला दिया है ऐसा कहते हैं। इधर श्रीमान् पं०माणिकचन्द्रजी न्यायाचार्य व पूज्य श्रीमान् वर्णी जी महोदय पं० गणेशप्रसाद जी व सिद्धान्तशास्त्री-जी आदि विद्वान भी पूछ न ताछ देख न परख मारमारके प्रवाहमें ये भी बह गये और हमारे संठ लोग महोदय भी कोई इधर कोई उधरकी हांमें हां मिलाते हुये मिल गये, अब मैं सब विद्वानोंसे व

सब भाइयोंसे नम्र निवेदन करते हुये पूछता हूं कि जैन सिद्धान्तका यह अटल सिद्धान्त है कि "निरपेक्षा नया मिथ्या सापेक्षा वस्तुतोऽर्थकृत्" सापेक्ष नय प्रमाणसे वस्तु सिद्ध है निरपेक्ष नय मिथ्या है और अपेक्षासहित नयें वस्तुको सिद्ध करने वाली होती है जैसे और लोग गौके अंगमें और पूछमें तेतीस करोड़ देवता मानते हैं या गौको देवता या पूज्य मानते हैं और उसके गोमूत्र और गोबरको पूज्य और पवित्र मानते हैं वैसा हम लोग जैनी नहीं मानते हैं जैसे एक सनातनी गंगामें स्नान करे और हम भी गंगामें स्नान करें तो हम सनातनी नहीं हो जायंगे। सनातनी गंगामें स्नान करनेको पुण्य धर्म मानते हैं और हमारे अभिप्राय-में जैसा घरमें स्नान करना वैसा गंगामें स्नान करना है। हम स्नान में आरंभजनित हिंसा मानते हैं परन्तु देवपूजादि धर्मकार्य गृहस्थका नित्यधर्म है और देवपूजादि स्नान करके ही करना चाहिये इसलिये वह स्नान भी देवपूजादि धर्मके कारण कोटिमें आ जाता है। इससे वह स्नान करना भी पुण्यबन्धका कारण हो गया। देवपूजादि धर्माचरणका साधक स्नान परिणामके उज्वलताका कारण होनेसे देवपूजादिसाधक स्नान पुण्यबन्धका कारण हो जाता है परन्तु स्नान पदार्थ तो पुण्यबन्धका कारण नहीं। यदि स्नान पुण्यबन्धका कारण होता तो जलमें डुबकी लगाते २ ही स्वर्गप्राप्ति हो जाती और यदि ऐसा होता तो जलजन्तु मेढ़क मछलियां सब ही सीधे स्वर्ग चले जाते सो ऐसा होता नहीं इसलिये स्नान-

मात्र पुण्यबन्धनका कारण नहीं किन्तु धर्म्मसाधक स्नान भी धर्म्म साधकताके कारण पुण्यबन्धके कारण कोटिमें वह स्नान भी गिना जाता हैं इसी हेतु आचार्योंने इस स्नानको भी शौच धर्म्म में लिखा है। श्री दशलक्षण धर्मके पूजन प्राकृत जयमालमें लिखते हैं (अहवा फासुय जलकयह्णाणे) अथवा प्रासुक जलसे किया हुआ स्नान भी बाह्य शौच धर्म्म है और श्री सकलकीर्त्ति आचार्य सदुभाषितावलीमें लिखते हैं।

मन्त्रस्नानं तपःस्नानं स्नानञ्चेन्द्रियनिग्रहः।
सर्वभूतदयास्नानं जलस्नानन्तु पञ्चमं ॥१॥
जलस्नानं गृहस्थानां पूजादिशुभकर्मसु।
तैलाभ्यङ्गे मृते धूमे मैथुने क्षौरकर्मणि ॥२॥

जैसे यज्ञोपवीतादि संस्कारोंमें प्रायश्चित्तादिमें मन्त्र जाप्यादि शौचधर्म्ममें स्नान पञ्च प्रकार कहा है। मंत्र स्नान १ तपःस्नान-इन्द्रियनिग्रह स्नान ३ सर्वभूतदयास्नान ४ पञ्चम जलस्नान ५ कोई जगह मन्त्रसे प्रोक्षण (सींचन) करनेसे मन और आत्मा तथा शरीरादिकको पवित्र करते हैं, कहीं उपवासादि तप द्वारा आत्माको शुद्ध करते हैं। जैसे प्रोषधोपवासादिसे कहीं इन्द्रियों-के निग्रहसे जैसे ब्रह्मचारी सदा शुचिः 'ब्रह्मचारी' सदा पवित्र है कहीं प्राणी मात्रकी दयासे जैसे कोई चाण्डालका बालक हाथीके नीचे आता होवे तो उसके अस्पृश्य (अछूतका) विचार न करके उस समय उस बालकरक्षा कर लेना ही धर्म्म होगा उसकी रक्षाकरके पीछे स्नानादि करो और पांचवां स्नान-

जलस्नान है। यह गृहस्थोंको पूजादिक देवपूजा गुरुपूजा स्वाध्या यादि नित्य कर्म हैं इस निमित्त टट्टी पेसाबादि शौचादिसे निवृत्त हो नित्य स्नान करना और मृतकके साथ जाने पर मुर्देके छुये लगने पर, मैथुन करके तथा बाल बनवाकर भी स्नान करना चाहिये ऐसा उपदेश है तब स्नान आरंभके कारण पापबन्धका कारण है तो पूजादि साधक विशिष्ट स्नान कहीं २ पुण्यबन्धके कारण कलापमें आ जाता है जैसे शंखिया विष है प्राणघातक है परन्तु वही शंखिया शोध कर भस्म किया हुआ आधा चावल भर लेनेसे (स्वांस रोग) दमा रोगको ज से दूर करनेवाला हो जाता है इस-लिये प्रतिदिन पदार्थोंकी उपयोगिता अपेक्षासे लेनी चाहिये। उस गोबरकी उपयोगिता नजर दूर करने निमित्त अथवा पाषाण तथा धातुकी खानिजनित दोष होते हैं उसके दूर करनेके निमित्त अथवा शिलावटी द्वारा प्रतिमा निर्माण समयमें लाने धरनेमें अपवित्र स्नानसे सम्बन्धजनित अपवित्रता दूर करने निमित्त अथवा खानिमें आकस्मिक आपतित अपवित्र चीजोंके सम्बन्धसे आशंकित अपवित्रता दूर करनेके निमित्त, प्रतिष्ठापाठादि ग्रंथोंमे व्यवहारमें मानी हुई अष्टशुद्धियोंमें गर्भ जन्म अवस्थापन्न प्रति-माओंके खनिज दोष दूर करनेके निमित्त गृहस्थावस्थामें भूमिमें अपतित गोबरको अभिषेक समयमें ले लिया है तो भी वह अरहंत अवस्थापन्न प्रतिमाके अभिषेकमें कदापि नहीं लिखा है। इसलिये जो साधारण जनता यह सुन कर कि भगवान्‌का अभिषेक गोबरसे लिखा है, चौंक उठती है

और प्रतिष्ठा पाठोंमें ही अवज्ञा दिखाने लगती है यह जनताकी अनभिज्ञता अज्ञानकारीके भूल है। विद्वानोंको चाहिये कि शास्त्रोंके लेखका अर्थ अनुभवसे करें और जनताके भ्रमपाये करें सो खानि दोष कोई ऐसे भी हो सके हैं जो प्रतिमा बननेपर भी वे यदि विकार पैदा करें तो प्रतिमामें गुमड़ी सी उठ आवे जैसे भिलावा शुद्ध करनेके लिये गोबरमें पकाते हैं तो गोबरसे भिलावाका तेल निकल जाता है तब उसमें वह खराबी नहीं रहती जो कच्चेमें होती है। कच्चे भिलावाका तेल लग जानेसे या भिलावेका धुँआ लग जानेसे देह सूज जाती है वह खराबी भिलावेको गोबरमें पकानेसे निकल जाती है ऐसी ही कोई बातें पाषाणमें व धातुओंमें खराबीकी संभावना होती होगी उसके दूर करने निमित्त प्रतिमाकी प्रतिष्ठाके पहली अवस्था गर्भजन्म-कोमें जब मण्डप प्रतिष्ठा करनेके बाद जिस दिन प्रतिमायें वेदी पर ली जाती हैं और गर्भ दिन समझा जाता है उसके दूसरे दिन जन्म होनेपर अनेक औषधियोंके क्वाथ द्वारा प्रतिमाका कई बार अभिषेक कराया जाता है उसी समय कई औषधियोंके साथ गोबरको भी लिखा है, धूली शाल कलशद्वारा धूलीसे भी स्नान कराना लिखा है अर्थात् धूलीसे मलके भी अनिष्ट दोष दूर करना लिखा। यद्यपि नेमिचन्द्र प्रतिष्ठापाठ किन्हीं भट्टारक का ही बनाया हुआ प्रतीत होता हो परन्तु नेमिचन्द्र प्रतिष्ठापाठ ही क्यों किन्तु वसुनन्दि प्रतिष्ठापाठ और आशाधर प्रतिष्ठापाठों-में भी लिखा है और आकर शुद्धिके लिये साफ लिख दिया है

एवमाकृत्य सत्शुद्धिं कृत्वाशास्त्रोक्तकर्मणा ।
श्रीवर्द्धमानमन्त्रेण जिनार्चामभिमन्त्रयेत ॥

इस प्रकार शास्त्रोक्त कर्मसे शास्त्रमें कही हुई विधिसे आकर शुद्धि करके श्रीवर्द्धमान मन्त्रसे भावी जिन प्रतिमाको अभिमन्त्रित करे। अब कोई उछल कूदनेकी बात नहीं है पदार्थोंका स्वरूप समझ लेवे कि यह कहांकी बात है और कहां लगाई जा रही है। यदि पं० मक्खनलालजी इस विषयको नहीं जानते है और उनको अनुभव इस विषयका नहीं है तो उन्हें तो अपरिचित विषयमें जाना नहीं चाहिये था और झांझरी आदिको अनुभव नहीं तो झांझरी आदिको होहल्ला मचा कर शास्त्रों पर अश्रद्धा उच्छृङ्खलता नहीं दिखानी चाहिये थी। चर्चासागर ग्रन्थ संगृहीत ग्रन्थ है कोई चंपालालकी निजी कृती नहीं है वह तीन बार या अनेक बार अप्रमाणित ठहरे हमें कोई वक्तव्य नहीं। हमारी कोई क्षति नहीं। चंपालालजीने बीसपन्थ आम्नायके पक्षसे लिखा हुआ ग्रन्थ है शास्त्रोका आशय कुछ लिखा है कुछ छोड दिया है जैसे पार्श्वस्थ आदिक पञ्च प्रकारके भ्रष्टमुनि किसी प्रकारके हिंसादिक पंच पाप कर बैठें तो पहले आचार्य संघसे निकाल देवें फिर वह दुःखी हो कर आचार्योंके पास आवे और वह पार्श्वस्थ आदिक भ्रष्टमुनि आचार्यमहाराजसे अर्जु विनती करें तब आचार्य दीक्षा छेद कर पुनः दीक्षा देवें फिर प्रायश्चित्त ग्रहण करैं उन भ्रष्टमुनि पार्श्वस्थ आदिको तो लिखा चर्चासागरमें और केवल मुनियोंके लिये प्रायश्चित्त लिख मारा है कि कोई मुनि मुनिको मार डाले

तो एक वर्ष तेला पारणा करै यहां पर इतनी बात प्रायश्चित्त-के पहिले ही लिखनी थी कि पार्श्वस्थादिक भ्रष्टमुनि कोई मुनि-हत्या कर बैठे तो उस मुनिकी दीक्षा छेद कर संघसे निकाल देवै फिर वह अपने किये हुये पापसे भयभीत हो प्रायश्चित्त लेवै तो पुनः दीक्षा दे कर यह प्रायश्चित्त देवै तब तो साधारण जनताको भ्रम न होता परन्तु इतनी बात छोड़ कर केवल प्राय-श्चित्त ही लिखा इसीसे जनसाधारणके लिये भ्रम उत्पादक लेख कर दिया कुछ श्री वीरनन्दी आचार्यके लिखे प्रायश्चित्तसे मत-भेद भी है तथा चर्चासागरमें प्राकृतभाषामें प्रमाण दिया है वह श्वेताम्बर ग्रन्थका प्रमाण हो तो भी ताज्जुब नहीं क्योंकि जो सिद्धोंकी अवगाहना चरम शरीरसे एक तिहाईकम होजाना श्वेताम्बर ग्रन्थमें लिखा है अपने मूलसंघके शास्त्रोंमें तथा गोमटसारजीमें हमारी निगाहमें कहीं देखनेमें नहीं आया किंतु 'किंचूणा चरमदेहदो सिद्धा' अर्थात् चरम शरीरसे किंचित् ऊन-लिखा है चर्चासागरमें त्रैलोक्य प्रज्ञप्तिका प्रमाण दिया है वह प्रमाण दिगम्बर है कि श्वेताम्बर यह नहीं मालूम हुआ है।

चर्चा सागरमें सिद्धोंकी अवगाहनाको तिहाई कम होनेमें दिगम्बराचार्य सकलकीर्ति आचार्य विरचित सिद्धान्तसार-प्रदीप का प्रमाण दिया है वह सोलहमा अध्याय का ८ वां श्लोक है

गतसिक्थकमूषायामाकाशाकारधारिणः ।
प्राक्कायायामविस्तारास्त्रिभागोनप्रदेशकाः ॥८॥

इसको हमने कलकत्ताके चावलपट्टीके श्रीबडेमन्दिरजीमें देखा तो श्लोकमें फर्क पाया उसमें लिखा है-

गतसिक्थकमूषाया भाकाशाकारधारिणः ।

आयामाकारविस्तारः किञ्चिदूनप्रदेशकाः ॥८॥

इसमें भी किञ्चित् ऊनही प्रदेश सिद्धपरमेष्ठीके लिखे हैं त्रिभागोन नहीं लिखा है। यह प्रतिसं १८५५ की पं० भागचन्दजी की लिखी पदच्छेद सहित है। उन्होंने लिखा है आत्म पठनार्थं परन्तु भाषा चोपाई बन्ध सिद्धान्तसारप्रदीप नथमल-बिलाला कृत अर्थात् लालचन्द पांडे कृतमें त्रिभागोन लिखा है वही त्रिलोकप्रज्ञप्तिका प्रमाण भी दिया है सो पं० भागचन्दके समक्ष वह भाषा ग्रन्थ प्रमाणित नहीं दूसरे यह तर्कसे भी सिद्ध नहीं होता क्योंकि सवापांचसौ धनुष अवगाहना, ऊँचाईका नाम है सो जो लोग यह कहते हैं कि पेट नाक कानके आकाशको बाद देनेसे तिहाई कम हो जायगा सो भी सम्भवित नहीं। उचाईमें जो हुआ है वह कम थोडे हो। हो जायगा, वह पिचक थोडे हो जायगी तीसरे जो लोग ऐसा कहते हैं कि पेट आदि अवयवोंका आकाश नि-कलजानेसे कम हो जायगा सो भी सम्भवित नहीं संकुचितकरनेमें कौनसा कर्म बाकी रह गया जिसने आकारको संकुचित किया यदि स्वभावसे ऊर्ध्वगमनवत् माना जाय तो लोकके बराबर असंख्यात प्रदेश प्रस्तारित हो जाने चाहिये संकुचित होनेका स्वभाव नहीं तीसरे संकुचित होनेसे आकार विरूप हो जायगा नाक कान अवयवोंका आकार कुछ भी नहीं रहेगा अशोभन या जड़वत्

त्रिकोण चोकोर हो जायगा तो सिद्ध परमेष्ठीका आकार माना नहीं सब अवयव माने हैं सिद्ध प्रतिमाका स्वरूप प्रतिमाका स्वरूप व प्रतिष्ठा पाठोंमें अष्ट प्रातिहार्यरहित मनुष्यकासा माना है जो धातुके पत्रमें आकार छेकनेकी पृथा 'मोम गयो गलि मूष मझार रह्यो तहाँ व्योमतदाकृतिधारो, इस आधारसे आकार छेकते हैं धातुको काट कर या ढाल कर सो वह भी आकार शास्त्र विरुद्ध है मूषेमें आकाशका आकार नाक कान पग आदिका आकार (सांचेमें) रहैगा और इस प्रथाके आकारमें सिद्ध प्रतिमा अंग-भंग रहती है नाक आंखे पग किसी प्रकार भी नहीं रहते इस-लिये विरुद्ध है फिर जो पेट आदिके आकाशको बाद देंगे तो पेट-की खालमें अंगुल चोड़ी मोटीमें जो आत्म प्रदेश है वे कहां चले जायंगे किधर संकुचित हो जायंगे पीठमें तो समचतुरस्रसंस्थान नहीं और यदि वहां संस्थानादि मुटाई आदि कुछ नहीं रहती चपटे हो जाते हैं तो चपटे करनेवाला कौन जब कोई कर्म शेष नहीं रहा और "गतसिक्थकमूषायामाकाशाकारधारिणः" इस श्लोकसे मूषेमें जो आकाश रहा जाता है तद्वत् आत्माके प्रदेशोंका आकार रह जाता है यह भी बात उस मूषेके आकाशमें नाककान सब अवयवोंको सिद्ध करता है चपटापन सिद्ध नहीं करता इस-लिये युक्तिसे भी त्रिभागोन आकार नहीं बनता। हाँ! एक बात अवश्य है कि कोई घनफलकी कल्पना करके अर्थात् सिद्ध परमेष्ठीके उन प्रदेशोंका घनफलकी कल्पनासे आकार बनावे तब हो सक्ता है।

जैसे लोकका ३४३ राजुका घन निकालनेके लिये एक राजु-लंबा चौड़ा ऊंचा टुकड़ेकी कल्पनाके लिये मध्य लोकके एक राजु चौड़ाईको लिया और नरकतले सात राजु लिया इसके बीच-में आधे आधे दो टुकडे करै तो एक तरफ आधा राजु और दूसरी तरफ साढ़े तीन राजु इन दोनों उलटे सीधे धरके चोकोर चार ४ राजूके लंबे चोड़े टुकडे बन गये इस प्रकारकी उन प्रदेशो-की कल्पनासे घन निकाल कर आकार बनानेकी कल्पना करे तो वह काल्पनिक आकार त्रिभागोन हो शक्ता है। मैं समझता हूं इसी कल्पनासे श्वेताम्बरी ग्रन्थोंमें लिखा गया होगा। पं० चंपा-लालजीको शास्त्रीय प्रमाणोंको इकट्ठे करनेकी धुनिमें श्वेताम्बरी दिगम्बरीय ग्रन्थोंका लक्ष्य न रहा हो तो हो शक्ता है या दिगम्ब-रीय ग्रन्थोंमें भी किसीमें इसी घनफलको दिखाया हो तो हो शक्ता है और चंपालालजीने उस काल्पनिक घनफलके कथनको आकार त्रिभागोन रह जाता है ऐसा समझ लिया हो और घनाकार की अपेक्षा न समझ ऐसा लिखाहो तो होशक्ता है अन्यथा त्रिभा-गोन नहीं बनता। हमें यहां आगरेमें एक छपा ग्रन्थ जैन तत्व प्रकाश श्वेताम्बर देखनेमें आया उसमें सिद्धोंकी अवगाहना दोतिहाई रह जाना लिखा है। कोई कोई भाईने हमसे कहा कि दिगम्बर शास्त्रमें भी लिखा है। परन्तु उन्होंने निर्णीत पता न देनेसे हमे सन्देह ही है। शास्त्रमें किञ्चित् ऊन शरीरसे लिखा है।

इस प्रायश्चित्त विषयमें जो झांझरीजीका कहना हैं कि वह थोड़ा प्रायश्चित्त है सो वह थोड़ा प्रायश्चित यों है कि आधी

बात तो यह नहीं लिखी कि दीक्षा छेदकर सङ्घसे निकाल देवे और फिर आचार्यके पास आवे तो क्रमसे सात सङ्घके आचार्योंके पास क्रमसे एक २ के पास भेजें और सबके पास आकर अपने दोषोंकी आलोचना करे तब अन्तिम सातवें गणके आचार्यका दिया हुआ प्रायश्चित्त लेवे तब शुद्ध होवें। यह कथन श्रीआचारसार श्रीवीर-नन्दि आचार्य जो श्रीजिनसेन स्वामीके गुरु थे और धवल आदि सिद्धांतोंकी टीका की है उनका बनाया हुआ है उसमें लिखा है-

पुनर्दीक्षाग्रहो मूलं सर्वां पूर्वां तपःस्थितिम् ।
छित्वोन्मार्गस्थपार्श्वस्थप्रभृतिश्रमणेष्विदम् ॥१॥

उन्मार्गगामी पार्श्वस्थ आदिक भ्रष्टमुनियोंमें यह प्रायश्चित्त हैं कि पूर्वकी पहली की हुई समस्त तपस्याकी स्थितिको छेद कर फिर मूलमें आ जावे अर्थात् गृहस्थ परिणामोंमें आ जावे और फिर दीक्षा ग्रहण करे। भ्रष्टमुनि—पार्श्वस्थ १ कुशील २ संसक्त ३ अवसन्न ४ मृगचारी ५ पांच प्रकार हैं, इनका लक्षण 'आचार-सार'में खुलासा है-

वसत्युपधिसंगस्थ पार्श्वस्थः स्यात् कुशीलकः ।
संघाहितकरस्तीव्रकषायो व्रतवर्जितः ॥१॥
संसक्तो वैद्यमन्त्रावनीशसेवादिजीवनः ।
ज्ञानचारित्रहीनो ऽवसन्नः स्यात्करणालसः ॥५१॥
स्वच्छन्दो योगणं त्यक्तुं चरत्येकाक्यसंवृतः ।
मृगचारीत्यमी जैनधर्म्माकीर्तिकरा नराः ॥५२॥

जो वसतिका आदिमें प्रतिबद्ध हों अर्थात् जो वसतिका आदिमें मोहबंध गया हो, मठाधीश हों वे पार्श्वस्थ भ्रष्टमुनि हैं और जो चतुर्विध मुनिसंघ अथवा मुनि अर्जिका श्रावक श्राविका चतुर्विध संघके अहित करनेवाले हों तीव्र कषायी व्रत रहित हों वे कुशील भ्रष्टमुनि हैं तथा वैद्यक व मन्त्रादिक से व राजादिककी सेवासे जीविका कर निर्वाह करते हों और ज्ञानचारित्रहीन हों वे भ्रष्ट अवसन्न मुनि है। जो इन्द्रियोंके विषयोंसे प्रमादी हों और जो गणको छोड़कर संवररहित स्वच्छन्द अकेले विचरते हैं वे मृगचारी मृगवत् विचरनेवाले भ्रष्टमुनि हैं। ये पांचो ही प्रकारके भ्रष्ट मुनि जैनधर्मकी अपकीर्ति निन्दा करानेवाले हैं, त्याज्य हैं और इन्हीं पांच प्रकारके भ्रष्टमुनियोंका कथन करते हुये और उन्हींका अपराध दिखाते हुये लिखा है-

यतीन् प्रहरतोऽन्यस्त्रीहरणादींश्च कुर्वतः।
दशनवपूर्वज्ञस्य त्र्याद्यसंहननस्य तत्॥

जो भ्रष्टमुनि किसी मुनिको मारे या परस्त्री हरण करे और वह नव दस पूर्वतक पढ़ा हुआ भी हो और आदिके तीन संहनन वाला हो अर्थात् वज्रवृषभनाराच वज्रनाराच नाराच ये तीन संहननवाला हो तो वह तत् पूर्व कहा हुआ दीक्षाछेद मूल प्रायश्चित्त लेवे अर्थात् दीक्षा छेदकर संघसे निकाल देवे फिर

द्वादशाब्देषु षण्मासषण्मासानशनं मतम्।
जघन्यं पञ्च पञ्चोपवासं मध्यन्तु मध्यमम्॥५४॥

बारह वर्षोंमें छह छह महीनाका उपवास कर पारणा लेवे अर्थात् छह मास उपवास एक पारणा फिर छह मास उपवास

एक पारणा इस प्रकार बारह वर्ष तप करै। जो अधन्य संहनन हो मन्तका स्फाटकसंहननका धारक हीनशक्ति हो तो पांच पांच उपवास एक एक पारणा बारह वर्ष तक करै और मध्य संहनन अर्द्धनाराच कीलकका धारक हो तो शक्ति प्रमाण मध्यम रीतिसे प्रायश्चित्त लेवै।

यदि घमंड (मान) से अपराध किया हो तो सात २ संघके आचार्योंमें फिरा फिरा कर फिर वही प्रायश्चित्त देवे। इस कथनसे १२ बारह वर्षका प्रायश्चित्त हैं और चर्चासागरलिखित १ वर्षका प्रायश्चित्त है इसमें भी भेद हो गया। चर्चासागरमें प्रायश्चित्त चूलिका नामा ग्रन्थका प्रमाण दिया है परन्तु श्रीवीरनन्दि आचार्य-के कथनसे मिलान नहीं हुआ।

इसी प्रकार वह गोबरका आशय है। जो चर्चासागरमें गोबर का अभिषेक लिखा है उस माफिक लेख श्रीवसुनन्दि प्रतिष्ठापाठ तथा पं० अशाधरजीके प्रतिष्ठासारोद्धारमें नहीं है। वसुनन्दि प्रतिष्ठापाठमें लिखा है कि रोचन डाभ सरसों पद्माख अगर दूब जो धान चन्दन रूपा सोना मालती कुन्दपुष्प नन्द्यावर्त स्वस्तिक तिल भूमिमें नहीं गिरा ऐसा गोबर और नदीतटकी मट्टी पहले इनसे उस अप्रतिष्ठित प्रतिमाका स्नपन करे फिर अमृता सहदेई विष्णुकान्ता सितावर भृंगराज लेकुर श्यामा।

एताभिर्युक्ततीर्थाम्बु पूर्णशुभ्र महावरैः।
मन्त्राभिमन्त्रितैर्भक्त्या जिनार्चामभिषिञ्चयेत् ॥१॥

फिर इन औषधियोंसे युक्त गंगानदी अथवा कूपादिका मन्त्राभिमन्त्रित शुद्ध जलयुक्त कलशोंसे जिनप्रतिमाका अभिषेचन करे। हमने पूरे श्लोक नहीं दिये हैं लेख बढ़ेगा तथा हमको इतना समय भी नहीं मिलता इस विषयमें तो चार विद्वान् समक्ष बात करें तभी तत्त्व निकलता है। ये विषय परस्पर कषाय और अज्ञानकारी तथा अननुभूतिके कारण जैसी उद्धतता से एक दूसरे को भला बुरा कहते हुये चल रहे हैं इससे शास्त्रोंकी अवहेलना और घात होता है। मैंने इस झगड़े के प्रथम ही श्री पं० मक्खनलालजी न्यायालंकारसे तथा श्रीमान् बाबू माणिकचन्दजी बैनाड़ा और श्रीमान् सेठ प्रभूलालजीसे कह दिया था कि आप लोग कह देवें कि यह ग्रंथ बीसपन्थ आम्नायके सिवायसे लिखा गया है। तेरह पन्थ आम्नायके प्रमाण कोटिका यह ग्रन्थ नहीं है। आप ऐसा इनसे कह देवें तब आप लोगोंका पिंड छुटेगा और इस ग्रन्थमें मुनियोंका प्रायश्चित्त जो लिखा है उसमें भ्रष्ट मुनियों की बात तो लिखी नहीं है और सामान्यमें लिख दिया है सो भी कम बढ़ कर इससे साधारण जनताको भ्रमोत्पादक है। मुनिपदमें रह कर ऐसे हिंसादिक पाप कैसे करे महाव्रत ही नहीं रहता इसका असर अन्य मतावलम्बियों पर बुरा पड़ेगा इससे या तो इसे प्रमाण कोटिका ग्रन्थ नहीं है ऐसा कह दें या कोई और उपाय विचारिये। पं०जीने कहा कि मैं कैसे कह दूं मैंने पूरा देखा नहीं फिर एक दिन चावलपट्टीके बड़े श्री जिनमन्दिरजीमें शास्त्रसभामें इन्हें जनताने घेर लिया और भाई रतनलाल

झांझरी तथा श्रीमान् पं० बाबूलालजी वैद्यके द्वमाद् और पीछेसे आकर श्रीमान् पं० गजाधरलालजी न्यायतीर्थ व० श्रीमान् सेठि बाबू छोटेलालजी आदिने प्रश्न किये। पहला प्रश्न श्रीपद्मनन्दि पञ्चविंशतिकाके श्लोक पर था। चर्चासागरमें 'जिनगेहे मुनिस्थिति' ऐसा पाठ लिखकर यह अर्थ लिखा है, कि श्रीमुनिराजजीका रहना कलिकालमें जिनमन्दिरमें है और प्राचीन भाषाकारने 'जिन-गेहो' पाठ लिखकर जुदा अर्थ किया है। कलिकालमें जिनमन्दिर तथा मुनियोंका रहना और धर्म दान इन सबके मूल कारण श्रावक हैं इसपर पं० मक्खनलालजी का कहना था कि 'जिनगेहे' इस सप्तम्यन्तपदसे जिन चैत्यालयमें मुनियोंका रहना बत-लाया है, कलिकालमें और पं० गजाधरलालजी व रतनलालजी आदिका कहना था कि यहां 'जिनगेहो' इस प्रथमान्तपदसे जिन-मन्दिर एक धर्मका अंग जुदा है और वर्त्तमान पंचमकालमें मुनियोंकी स्थिति बनी रहे यह धर्मका अंग जुदा है ये सब धर्म-के अंग इस कलिकालमें श्रावकोंसे चलते हैं। मेरे ऊपर दोनों तरफसे जोर दिया गया तब मैंने कहा कि इसका स्पष्ट आशय तो संस्कृत टीकासे निकलेगा। मैं इतना कह कर मौन होगया क्यों-कि मेरे हृदयमें भाषाकारका अर्थ उचित जचा और पं० जी तथा चर्चासागरका अर्थ खिचावका जचा। मैंने विचारा यदि तुम यह कहे देते हो कि भाषाकारका अर्थ ठीक है तो ये लोग पंडितजी-को नीचा गिराना चाहते हैं और पं० जीकी बात मुझे संगत नहीं दिखती कारण जब एक प्रामाणिक आचार्य रचित आत्मानु-

शासनके वाक्य मुनियोंको ग्राममें बसनेसे कलिकालमें कमजोरी प्रगट करते हैं इसलिये मैं चुप हो गया फिर मोतीमुंगा-ओंकी आज्ञाओंपर झगड़ा होता रहा वे कहैं आप प्रमाण उपस्थित करें। शास्त्रीय प्रमाण विधि निषेधमें किसीके पास नहीं थे इसलिये उस दिन वे स्थगित हो कर शास्त्रसभा विसर्जित हो गई परन्तु रात्रिमें मेरे चित्तकी चिन्ता न गई कि यह झगड़ा यहीं तय हो जाय नहीं तो यहसारी जैन समाजमें खल-बली मचावेगा ऐसा विचार मैंने यह निश्चय किया कि एक सात आठ उपस्थित विद्वानोंको और दो चार श्रीमान् जो इस ऊहापोहसे सम्बन्ध रखते हैं उन सबको एक कमेटी बनाकर चर्चा-सागरका निर्णय कर लिया जाय। मैंने ही उचित नामावली चुनकर एक विज्ञापन लिख कर मन्दिरोंमें लगा दिया कि समाजके प्रधान प्रधान कार्यकर्त्ताओंको इस प्रकार उद्यम कर लेना चाहिये। विज्ञापन लगाये कई दिन हो गये किसीने भी कुछ विचार नहीं किया तीन दिन बाद एक विज्ञापन पं० मक्खनलालजी न्याया-लङ्कारने लगाया उसमें लिखा था कि मैं झांझरीजीके सब प्रश्नोंका उत्तर शास्त्रीय प्रमाणसे देनेको तयार हूं चुने हुये सौ पचास मनुष्यों के समक्ष यह विज्ञापन पढ़कर सब लोग अधिक उछले कूदे और कहा कि हम लोग आमसभामें उत्तर सुनना चाहते हैं इसलिये आमसभा बुलाई जाय। पं० मक्खनलालजी न्यायालंकारके विज्ञापन में नीचे यह भी लिखा था कि पं० झम्मनलालजी तर्कतीर्थने जो विद्वानोंकी कमेटीके लिये लिखा है वह हमें मञ्जूर है। इसका हमें

कुछ भी विचार न हुआ और लोगोंने विज्ञापनमें हमारा और भगत प्यारेलालजी ब्रह्मचारीका भी नाम दे दिया। मैं वेलगछिया श्री जिनमन्दिरजीमें दर्शन करने गया वहां पं० मक्खनलालजी न्यायालङ्कारसे भी बात-हुई तब उन्होंने कहा कि यह पबलिक सभाका नोटिस क्यों दिया। पबलिकमें चारों तरफसे बोलने लगेंगे वहां मैं किस किसको उत्तर दूंगा। हुल्लड़ मचेगा और आप लोगों-ने अपना नाम क्यों दिया। मैंने कहा कि आपने मेरे लिखे मुताबिक कमेटी जोड़नेका अनुसन्धान तो किया नहीं और विज्ञापन लगा दिया। आमसभा बिना कमेटी चुने कौन और मेरे विज्ञापन माफिक आपकी राय है ऐसा मालूम हो जाता तो मैं सबसे पूछ लेता अब आमसभा बिना कमेटी कौन कायम करै जिससे मेरा भी नाम उन्होंने दे दिया। इसलिये मैं वेलगछियामें दर्शन निमित्त तथा भगतजीसे विचार करने निमित्त आया हूं तब भगतजीसे पं० जीने कहा कि इस विज्ञापनको बदलवा दीजिये तब भगतजी तथा मैंने बाबू सेठि बिरदीचन्दजीसे टेलीफोन किया। जब सेठिजी ने कहा कि सभामें केवल कमेटी ही बनाई जायगी ऐसा उन्होंने भी स्वीकार कर लिया। सभा एकत्रित हुई सब लोग आये पर मेरे तथा भगतजी और बाबू बिरदीचन्दजी आदिके कहनेपर भी पबलिकने कमेटी जोड़कर निर्णय करना पसंद नहीं किया और कहा कि पं० जी दो चार प्रश्नोंका उत्तर दे देवैं। पबलिकमें "तब हम लोग कमेटीका विचार करेंगे। जनताने पं० मक्खनलालजीको बुलानेको कहा। आदमी भेजा गया

पं० जीने कहा कि मैंने पं० झम्मनलालजीके कथनानुसार कमेटी छोड़नेमें सम्मति दे दी है और पं० झम्मनलालजी कहें तो मैं चला आऊं। जनताने मुझसे पं० जी बुलानेको बहुत जोर दिया बाबू जवाहरलालजी बड़ा मन्दिर सिक्रेटरीने आमसभाके नोटिसपर लिख दिया था कि सभा आप अपनी झोलीपर बुलावें। कोई प्रकार का टंटा हो जाय तो मैं जिम्मेदार नहीं। मैंने जनताकी परणति टंटेकी आशङ्का जान नहीं बुलाया। सभा बरखास्त हो गई पीछे पं० मक्खनलालजीने यह लिखित उत्तर भेजा। सब जगह जो पुस्तकाकारमें भेजा गया है सबको विदित ही हैं। इस द्वंद्वसे मेरा भी सम्बन्ध होनेसे तथा पंडितोंकी नामावलीमें पंडितका पुच्छिल्ला मेरे पीछे भी लगा है इससे मुझे भी लोग जगह २ पर टोकते हैं तथा जो कुछ हुआ अब भी समाज मेरी प्रार्थना सुने तो अच्छा हैं। सवेरेका भूला साम तक ठीक ठिकाने आ जाय तब भी अच्छा समझा जाता है। जब तो कलकत्तेकी समाजसे प्रार्थना थी और अब अखिल भारत-वर्षीय जैन समाज तथा विद्वानोंसे प्रार्थना है कि मुख्य मुख्य स्थानोंके मुख्य २ उभय पक्षके विद्वान् एकत्र हो किसी स्थान पर सरलतासे जिससे धर्मकी निन्दा न हो और अवनति न हो समाजमें फूट न रहे वैसा उपाय विचार कर दो बातकी इधर उधरसे क्षमा धारणकर नम्र बनकर जिस प्रकारसे संगठन शक्ति बनी रहे और धर्मका मार्ग अक्षुण्ण (अखण्ड) बना रहे वही काम करें उसी उपायका अवलम्बन करें सो ही श्रद्धालु सम्यग्दृष्टि

सज्जनोंका कर्तव्य है। यह अंग्रेजी सभा नहीं, यह पञ्चायत नहीं जो वोट लेकर तय कर लिया जाय। जो परस्पर दोनों तरफसे साधारण जनताके दस्तखत हस्ताक्षर कराकर भेजे जाते हैं यह भी कोई शास्त्रीय विचारोंका कायदा है?

यह विषय देवशास्त्र गुरु-रूप रत्नोंकी परीक्षाका है इसे इन रत्नों के परीक्षक उभय पक्षके विद्वान्रूपी जौहरी लोगोंकी ही आवश्यकता है। चाहे वे धनाढ्य हों चाहे निर्धन हों चाहे वे साधारण हों चाहे विशेष हों शास्त्रोंकी परीक्षा या शास्त्रोंके विषयभूत पदार्थोंकी परीक्षा प्रमाणीक आचार्योंके रचित शास्त्रोंसे विधि निषेधकी परीक्षा करो और युक्ति अनुमानादिसे आगमको सिद्ध करो। आगमानुसार युक्ति अनुमान चलाओ परन्तु ऐसा नहीं होना चाहिये युक्ति अनुमान लगाते लगाते पदार्थ ही नष्ट हो जाय। भैंस सहित मावा नहीं बनाना चाहिये परस्पर धर्मका विसंवाद करते करते कहीं धर्मका मावा न बना डाले। परस्परका कलह बुरा होता है इसलिये धर्म धोरियोंसे चाहें विद्वान हों चाहें श्रीमान् हों सबसे प्रार्थना है कि कहीं पर एकत्रित होकर इस टंटेको तय कर दो केवल कागजके घोड़ा दोड़ा दोड़ाकर संघशक्तिका ह्रास न करके सङ्घशक्ति बढ़ानेका प्रयत्न करें। यह मेरा लेख पहिलेका लिखा हुआ पड़ा है। मुझे सूरीपुरीके मुकद्दमेके बाबत इधर उधर जानेसे फुरसत नहीं हुई इससे छप नहीं सका पीछे मैंने सुना कि भा० दि० जैन खंडेलवाल [illegible] अधिवेशनमें ११ विद्वानोंकी कमेटी [illegible] निर्णयके [illegible] बनी

है उसमें समाजके सभी धुरंधर विद्वान हैं वह भी उत्तम है उसमें उभय पक्षके विद्वन् हैं उन्हींके द्वारा क्यों न इसका निर्णय कराकर इसकी शान्ति की जावे अथवा वे नियत विद्वान बैठ कर क्यों न इसका निर्णय कर इस विवादका टंटा तय करें। अथवा और दो विद्वानों की आवश्यकता हो तो और ले लें। मेरी समझमें चर्चासागरमें सबही विषय हेय नहीं, सब ही उपादेय नहीं, चर्चासागरमें आये हुये विषय सब शास्त्रोंमें हैं। परन्तु कुछ कम वेशीसे हेय होते हैं इसलिये संशोधनका एक पत्र लगाया जाय कि ये विषय इस प्रकार मान्य हैं इस प्रकार नहीं था चर्चासागरमें जिन ग्रन्थोंका प्रमाण दिया है वे ग्रन्थ प्रमाण होनेपर भी इसकी लेखनशैली अच्छी नहीं, कुछ विषय कम करके कुछ ज्यादा करके कुछका मतलब कुछ समझा कर लिखा है इससे यह प्रमाणकोटिका ग्रन्थ नहीं है परन्तु जैसी उभय पक्षकी ऐंचातनी चल रही है वह किसी प्रकार भी योग्य नहीं। परस्परकी ऐंचातानी इस प्रकार है कि गोमय (गोबर) तो जिस पाषाण और धातु आदिकी प्रतिमायें बनती हैं वे किस किस अपवित्र जगह व पदार्थोंका संसर्गकर धातु व पाषाण आते हैं इसका पता किसीको चलता भी नहीं तथापि ये बातें संभवित हैं कि जहां खानिसे पत्थर निकाले आते हैं वहां पाषाणोंपर किस किस चीजका संसर्ग हुआ है मालूम नहीं परन्तु संभवतः तो है अपवित्र वस्तुओंकी (मरपशु मलादि तकको) धातुके लोटा थाली आदि किस किस

करके खानमें लाये हुये तोड़े फोड़े जाते हैं और उन्होंके टुकड़े कर कारके इकट्ठे रहते हैं वे ही मोल लेकर गलाकर बनाये जाते हैं। धातुमें तो फिर भी अग्नि संस्कार लगकर दोष दूर हो जाते हैं परन्तु पाषाणके तो दोष दूर नहीं होते ऐसी दोष संभावनामें गर्भजन्म अवस्थापन्न अप्रतिष्ठित प्रतिमापर अभिषेकमें गोबर लिया है तब व्यवहारमें मानी हुई अष्टशुद्धियोंमें गोमय शुद्धि है सो वहां ली है गर्भजन्म अवस्था व्यवहार है तेरहपन्थी विवेक पंथी तो गर्भजन्म अवस्थाको पूज्य ही नहीं मानते (भगवान ही नहीं मानते) जो पंचकल्याणकमें गर्भजन्म कल्याणककी पूजा की जाती है वह भी भावि नैगमनयकी अपेक्षासे पूजा की जाती है तब भी वर्तमान अवस्था तो पूज्य नहीं वह व्यवहार व्यवस्था हुई उस व्यवहार अवस्थामें व्यवहारमें मानी हुई गोमय शुद्धि ली तो कौन सा अन्याय अपराध हुआ। व्यवहारीको व्यवहार ही शरण है। व्यवहार जितना है वह सब सदोष है व्यवहार निर्दोष होता ही नहीं, व्यवहारमें सदोषता निर्दोषता मानी हुई होती है। व्यवहारमें जहांतक सदोषता निर्दोषता की मर्यादा मानी हुई होती है, वहींतक कर सकते हैं अगाड़ी नहीं कर सकते, अगाड़ी सदोषको ही निर्दोष मान लेते हैं, दूषण ही भूषण हो जाता है, जैसे पानी हम स्वच्छ जलाशयसे छानकर लाकर पवित्र मानते हैं परन्तु वहांपर भी कोई चतुराई लगावे और बालकी खाल निकाले कि अजी जलमें तो मेंढ़क मच्छी आदि जलजन्तु रहते हैं वे उस जलको जूंठा करके या मलमूत्रादिसे अपवित्र कर देते हैं तब उसका किसीके

प्यासा उपाय है क्या ? या तो पवित्र शुद्ध उसीको मान लो दूषणको ही भूषण बना लो या प्यासे रह आइये सो प्यासा रहना तो बनेगा नहीं उस दूषणको ही भूषण बनाकर पानी पी लेना होगा इसीसे आक्षेपसे किसी कविने कहा है कि 'भगवान्‌को जल जो चढ़ाऊं तो कच्छ मच्छ जुठार जावे, नैवेद्य जो चढ़ाऊं तो मक्खी करें बखार हैं' पूरा हमें स्मरण नहीं है पीछेकी तुकमें लिखा है कि महाराज यासे सूखी नमस्कार है सो आजकलके हैं भाई लोग भगवान्‌के सामने छूछे हाथ लोटामोटासे खड़े हो जाते हैं, सूखी नमस्कार करते हैं। "देवे गुरौ वैद्य च रिक्तहस्तो न गच्छतु"। देवगुरुके और वैद्यके पास रीते हाथ न जाओ परन्तु अब मनमानी बात रह गई है विचार कुछ नहीं तो यहां पर छाना हुआ जल पवित्र है व्यवहारमें माजे हुए वर्तनमें छाना जल पवित्र है यहां तक मर्यादा है और पूजनमें छानकर लाये हुये जलको मन्त्रसे पवित्र करके वर्तो यहां तक मर्यादा है यहांपर आपेक्षिक मर्यादा व्यवहारसे ही जैसे पवित्र मानी वैसे ही गोबर अपवित्र वस्तु है परन्तु कहीं इससे भी अधिक अपवित्रता परिहारार्थ और कहीं गुणविशेषसे खनिजदोष निवारणार्थ अर्थात् खानिमें गन्धकादि संसर्ग दोषादि दूर करने निमित्त आचार्योंने लिया हो तो दोषको ही निर्दोष मान सक्ते हैं जैसे मयूर पिच्छ हाड़ होनेपर भी दयासाधक गुणविशेषसे पीछेमें क्यों लिया परन्तु उसकी भी मर्यादा है वह यही है कि पाषाण धातु शोधनमें प्रतिमाके लिये ही है परन्तु भगवान्‌के गर्भजन्म अवस्थाव भी साक्षात् शरीरपर यह भी

ग्राह्य नहीं इसी हेतु प्रतिष्ठापाठोंमें अर्हत् प्रतिकृती अर्थात् भावी अरहंत भगवान्की प्रतिमापर अर्थात् जबतक मन्त्रोंसे प्रतिष्ठित होकर अर्हत् अवस्था न हुई उसके पहले ही गर्भजन्म कल्याणककी क्रियामें धातु पाषाण शोधनार्थ लिया है इसीसे प्रतिष्ठापाठोंमें ही यह कथन है अन्यत्र नहीं और जो नीराजनामें लिखा है वह भी आरता (नीराजना) गर्भजन्म और राज्याभिषेक अवस्थामें ही लिखा है न कि अरहंत अवस्थामें इसलिये यह भी व्यवहार है क्योंकि यदि यह नीराजना अरहंत अवस्थामें की जाती होती तो शास्त्रोंमें उस अवस्था कथनमें लिखी होती किन्तु यह केवल गृहस्थ अवस्थामें ही ली है और उसमें हो मनुष्योंके दृष्ट्यादि (नजर) आदिकी आशंकासे गोबर तथा भस्मपिंड कुछ रख लेना लिखा है। कारण जब सर्वोत्तम सर्वांग सुन्दर वस्तु होती है तो जिनके पाप कर्मके उदयसे मिथ्यात्वके उदयसे उनका दर्शनोपयोग ज्ञानोपयोग टकटकी लगाकर देखना खोटा होता है। दृश्य पदार्थको हानिकारक हो जाता है। उसका असर न पडे अर्थात् उसकी दृष्टि एकदम संलग्न न हो जाय इस हेतु गोमय तथा राख सानी हुई आरतेकी थालीमें और चीजोंके साथ रख दी जाती है तो दृष्टि फिरनेसे उपयोगको फिरन हो जाती है संलग्नता नहीं होती तो वह दोष नहीं कर पाती। यह तत्त्व है यद्यपि भगवान् भगवान्के शरीरपर ये दोष कोई भी नहीं फटकते न कुछ कर सकते हैं तथापि संसारमें विघ्नोंकी आशंका से विघ्नविनाशक उपाय किये जाते हैं चाहे विघ्न उपस्थित हों वा

न हों यदि ऐसा नहीं है तो षट्कुमारिका देवियां तथा छप्पन-कुमारिका देवियां गर्भ शोधना क्या करती हैं और यहां तक क्यों लिखा है, कि देवियां माताके शरीरपर मन्त्र फूंकती हैं कि कोई उपद्रव न हो। संसारमें कर्म जनित उपद्रव होते ही हैं चाहे इन्द्र धरणीन्द्रादि क्यों न हों उन्हीं भगवान्‌के गर्भ कल्याणकमें छह मास पहले देव नगरी रचते रत्नवृष्टि होती और जब छः मास आहारको अन्तराय हुआ तब वे देव कहां चले गये। भगवान्‌के प्रशस्त पुण्योदयसे तो ही वे देवियाँ रक्षा निमित्त रहती हैं इसलिये नीराजना करना सब सम्मतिन है। अब रही बात यह कि नीराजनामें गोमय लिखा है या नहीं सो लेनेमें यशस्तिलकचम्पूमें श्रीसोमदेव आचार्य प्रमाणीक लिख रहे हैं। प्रतिष्ठा तिलकमें वसुनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती लिख रहे हैं आशाधरजी प्रतिष्ठा सारोद्धारमें लिखा है, तब क्या सबने भांग खा ली। यह नीराजना ग्रहस्थावस्थामें दुष्टयादि दोष दूरीकरण निमित्त तन्त्र है पूजा नहीं और पाषाण धातु शोधन निमित्त अभिषेकमें अन्य-वस्तुओंके साथ गोमय भी शोधनार्थ है वहांपर भी विवेक यत्नाचार है जबतक त्रसादिक जीवोंकी उत्पत्ति न हो जाय इसके पहिले ही भूम्यलित गोबर लेना परन्तु वह गोबर अर्हन्तस्वरूप प्रतिष्ठित प्रतिमाका अभिषेक द्रव्य नहीं। वहां अप्रतिष्ठित प्रतिमापर उपयोगिता होनेपर भी प्रतिष्ठित प्रतिमापर अग्राह्य है, मल है अपवित्र है, ऐसा शास्त्रप्रकरणसे हम ऊपर लिखकर चुके हैं क्योंकि नीराजना आदिपुराणमें राज्याभिषेकमें लिखी है और यशस्तिलक चम्पूमें भी जन्म कल्याणकमें लिखी है..

गेहेस्मिन् विहितार्चने निनदति प्रारब्धगीतध्वना-
वातोद्यैः स्तुतिपाठमंगलरवैश्चानन्दिनि प्रांगणे ।
मृत्स्नागोमयभूतिपिण्डहरितादर्भप्रसूनाक्षतैः
रम्भोभिश्च स चन्दनैर्जिनपतेर्नीराजनां प्रस्तु वे ॥२३॥

उपर्युक्त श्लोकका भाव यह है कि जिन भगवान्के माता पिताके घरमें जिस घरमें अर्चन हो रहा है और कहीं गीत गाये जा रहे हैं और कहीं बाजे बज रहे हैं कहीं स्तुतिपाठोंसे मंगल शब्दोंसे आंगनमें आनन्दनाद हो रहा है ऐसे भगवान्का राजद्वार आदि या नदीतटकी पवित्र मिट्टी तथा गोवर भस्मपिंड हरी डाभ पुष्प अक्षतादि कुंकुम सहित जल द्वारा नीराजना (आरतीका) आरंभ करता हूं इतने शास्त्रोंके वाक्योंसे गृहस्थाश्रममें लोकव्यवहारमें गोमयादि तांत्रिक पदार्थ लिये गये तो असमंजस प्रतीत नहीं होता परन्तु चर्चासागरके संग्रह कर्ता चंपालालजीने इन गोवर आदि वस्तुको अरहंत अवस्थापन्न प्रतिष्ठित प्रतिमा अरहंत भगवान्के सामने आरता करनेमें श्रीनेमिचन्द्र प्रतिष्ठापाठ-का प्रमाण दे दिया और गोबरसे आरती बतलाई यह भूल और ऐंचातानी है। इसी बातको लिखेको बांचकर पं० मक्खनलालजी तथा पं० रामप्रसादजी ऐंचातानी करते हैं और इसीकी पुष्टिमें यशस्तिलक चंपू आदि शास्त्रोंको प्रमाणमें उपस्थित करते हैं सो यह विचार नहीं करते कि अरहंत भगवान्के घातिया कर्म नष्ट हो गये अब वहांपर उस परमार्थ

अवस्थामें तन्त्रकी क्या आवश्यकता है। जिन कर्मोंके उदयसे दुष्कृत्यादि दोषोंकी आशङ्का होती थी वे कर्म ही नहीं रहे 'सम्भवव्यभिचाराभ्यां स्याद्विशेषणमर्थवत्' जहां पर जिस प्रकार सम्भव हो और कोई व्यभिचार अतिव्याप्त्यादि दोष न आता हो उस प्रकार विशेषण विशिष्ट अर्थ युक्त पदार्थका विवेचन करना चाहिये सो नहीं किया। यह तो केवल आज्ञा प्रधानियोंकी भूल है। अब परीक्षा-प्रधानी रतनलालजी आदिकी भूल क्या है सो सुनिये। जब नीराजना-का कथन श्री आदिपुराणजीके कर्ता श्रीजिनसेन स्वामी लिखते हैं तथा उसीके दृष्टको खुलासा यशस्तिलक चम्पूकार श्री सोमदेव आचार्य प्रतिपादन करते हैं तथा प्रतिष्ठापाठ प्रतिपादन करते हैं यदि पं०मक्खनलालजी आदि पंडित लोग उस पदार्थ स्वरूप न कह सके और वह अर्थ असंगत मालूम हुआ तब आपको तो विचारना चाहिये था कि सोमदेव आचार्यादि लिख रहे हैं तब बात तो कुछ है पर समझमें नहीं आती। पं०मक्खनलालजीको गोवरपन्थाचार्य जी गोवर पन्थाचार्यजी कह कहके तमाम लोगोंके कान बहिरे कर दिये। पंडित मक्खनलालजीको ही क्यों गोवरपन्थाचार्य बनाया किन्तु सोमदेव आचार्य वसुनन्दि सिद्धान्त चक्रवर्ती आदि तकको गोवरपन्थाचार्य बना डाला ऐसी निरर्गलता क्यों? परीक्षा प्रधा-नियोंका कर्तव्य तो यह होना चाहिये कि दश प्रमाणीक आचार्यों के वाक्यको मिलान करें उन वाक्योंसे जब असङ्गतता दिखती तब असंगत कहना चाहिये था मैं पूछता हु कि परीक्षाप्रधानी आप लोगोंने किसी ऐसे शास्त्रको भी निषेधमें उपस्थित किया है

कि वीतरागतामें अमुक अमुक चीज लेनी और अमुक २ चीज नहीं लेनी इस आर्षप्रणीत संस्कृत प्राकृत ग्रन्थसे यह साबित हो जावे कि वीतरागतामें और लोगोंने गोमय लिखा है व अप्रतिष्ठित प्रतिमा पर अनिष्ट दोष शोधन निमित्त जो अभिषेकमें जो चीजें लिखी हैं उसमें गोबर लिखा है वह जिनागमसे विरुद्ध है जिनमें ऐसा लिखा है वे शास्त्र नहीं ऐसे शास्त्रको उपस्थित करना चाहिये यदि ऐसा लिखा मिल जावे फिर भी जो हठ करैं वह मिथ्याबुद्धि हैं परन्तु आप लोग केवल युक्तियोंसे टालते हैं सो आगम आधार बिना युक्ति कोई कामकी नहीं। उस युक्तिका कोई मूल्य नहीं आप यह युक्ति देते हैं कि गोबर पशुका मल है महा अपवित्र है वह अरहंत भगवानूके अभिषेक और आरतेमें कैसे ले सके हैं। यह हम भी मानते हैं और ऊपर हम लिख भी आये हैं और अबभी यही कहते हैं कि अरहंत भगवानूके अभिषेकमें और आरतेमें गोबरलेना महा पाप बन्धका कारण है। गोबर कदापि नहीं लिया जा सक्ता परन्तु ग्रन्थोंमें जिस जगह लिखा है वह गृहचारा है। गृहचारामें लोकव्यवहार हैं लोक व्यवहारमें अष्टशुद्धिमें गोमय शुद्धि भी मानी है। व्यवहारमें अष्ट शुद्धियोंमें गोमय शुद्धि भी राजवार्तिककार श्रीअकलङ्कदेव स्वामी लिखते हैं। लौकिक शुचित्वमष्टविधं

कालाग्निभस्ममृत्तिकागोमयसलिलज्ञाननिर्विचिकित्सत्वभेदात् ।

कालशुद्धि जैसे जन्मके दश दिन जानेपर शुद्धि होती है इत्यादि-काल शुद्धि है, जो अस्पृश्य शूद्रादिकके जलादिसे व मल

मूत्रादिके संसर्गसे पीतलादिका बर्तन अशुद्ध होनेपर अग्निमें तपानेसे शुद्ध होता है जूठा बर्तन भस्म व मृत्तिका जलसे शुद्ध होता है मकान क्षेत्रादि मल मूत्रादिके संसर्ग होनेसे गोबरसे शुद्ध होते हैं। तथा बछुतसे घिय तथा भिलावादि गोबरसे शुद्ध होते हैं तथा रसायनादि क्रियामें हरतालादि ताम्रादि धातुयें गोमूत्र गोबरादिसे शोधित होते हैं, आत्मा और आत्मपरिणाम ज्ञानसे शुद्ध होते हैं तथा खान पान अन्नपान भक्ष्याभक्ष्य विवेकज्ञानसे शरीरादि भी विशुद्ध होते हैं और रोगादि दूर करनेके उपाय भूत औषधियोंसे चिकित्सक वैद्य विद्यासे व औषधियोंके सेवनसे आत्मा शरीरादि विशुद्ध होते हैं इसीलिये यहांपर आचार्योंने लिखा है यदि यह भी आपकी परीक्षामें न तुलती तो यह कह देते कि यह अंश किसीने मिला दिया है तहांतक तो गनीमत थी परन्तु आप लोग तो आचार्य और शास्त्रोंपर ही अश्रद्धा दिखलाते है जब जो विषय आपके समझमें नहीं आया वही शास्त्र अप्रमाण सो लोगोंने अर्जुनलाल सेठी आदिने श्रीगोमटसारादि तथा जुगुलकिशोरजीने आदिपुराण तक खण्डन कर डाले तब खण्डन करनेकी कोई मर्यादा तो नहीं रही। गोबरको जहांतक लौकिक व्यवहार है वहांतक तो धातुपाषाण शोधन निमित्त लेना लिखा है। खनिज दोष दूर करनेके लिये अर्हत्प्रति अरहंत होनेवाली धातु पाषाणकी प्रतिष्ठा सम्मुख अप्रतिष्ठित मूर्तिके अभिषेकमें लेनेतक लोक व्यवहार है और प्रतिष्ठित होनेपर परमार्थ व्यवहार है। परमार्थ व्यवहारमें गोबरको अभिषेक व आरतीमें लेना पाप

है संभव नहीं यह बात शास्त्रप्रकरणसे साफ है इस अवस्थामें सिद्ध है और भगवान्‌के गृहस्थ अवस्थामें भी जन्मादि अभिषेक में भी कदाचित भी नहीं लिया है जब अपने शरीरमें ही लगाते अशुद्धपना मालूम होता है तब भगवान्‌के साक्षात् शरीर सदृश ही सौगन्ध्यातिशययुक्त है उसपर गोबर कैसे संसर्ग किया जा सक्ता है। यह केवल प्रतिष्ठापाठोंमें पाषाण धातुमें आशङ्कित अशुद्धता दूर करने निमित्त प्रथम बार ही लिखा है पीछे चूर्णीशाल-कलश फिर औषधियोंके क्वाथसे स्नपन द्वारा शुद्ध करना लिखा है और मन्त्र यों लिखे हैं कि केवल पौद्गलिक पर-माणुओंसे ही नहीं किन्तु तपः शुद्ध ऋषियोंके विशुद्धात्मप्रेरित शब्द परमाणुओंसे भी प्रतिमाके परमाणुओंको बाह्यसंसर्ग जनित अशुद्धि दूर हो कर परमाणुओंका विशुद्ध परिणमन हो जाय और यह बात जगत् प्रसिद्ध अनुभव सिद्ध है कि मन्त्रोंसे पुद्गल पर-माणु तथा आत्मप्रदेश और आत्म परिणामोंका परिणमन (हरकत) होना है। जैसे एक मनुष्यने किसी दूसरे मनुष्यको गालियां दी तो वे गालियांरूप शब्द परमाणु उस दूसरे मनुष्यको शरीरमें आवाज रूपसे कर्ण द्वारा प्रवेश कर निकल कर दिया और वह उससे लड़ने लगा इसलिये जो लोग मन्त्रों पर श्रद्धा नहीं रखते उन्हें हमारी बात पर ध्यान रखना चाहिये। हमने कहनेका तात्पर्य यह समझना कि गर्भजन्म अवस्थामें भी भगवान्‌के शरीर व उनके माता पिताके शरीर पर क्यों इस गोबरका संसर्ग होसकता है जब उनके निजका शरीर ही मलमूत्र रहित होता है तब वहां कैसे

गोबर अभिषेकमें समझे, और इस पञ्चमकालमें कल्पवासी देव इस भारतभूमिमें दौर्गन्ध्य बहु आनेके कारण आते नहीं तब उस समय तृतीय चतुर्थकालमें इन्द्राणी तथा छप्पन कुमारिका व षट् कुमारिका देवियां भी नीराजना आरतीमें गोबर कैसे लिया ऐसी आशङ्का होती है परन्तु जब तक नीराजनामें गोबरका निषेध नहीं लेनेका किसी ऋषिप्रणीत शास्त्रमें न मिले तब तक हम कैसे नीराजनामें लिये हुये गोबरका निषेध कर दें। नीराजना गृहस्थ अवस्थामें भगवानकी तथा माताकी षट् कुमारिका द्वारा की हुई लिखी है। यद्यपि आदिपुराणमें नीराजना गृहस्थ अवस्थामें करना लिखा है परन्तु नीराजनामें क्या क्या लेना चाहिये सो नहीं लिखा है तथापि जब श्री सोमदेवाचार्य यशस्तिलक चंपूके कर्ता धुरंधर विद्वान् प्रमाणीक आचार्य नीराजनामे गोबर लिखते हैं तब विधिमें प्रमाण मिलता है निषेधमें नहीं ऐसी अवस्थामें हमें बहुत विचार करना चाहिये। जीवंधर चरित्रमें लिखा है कि मुनिके शरीरमें देवने प्रवेश करके उनके उदरमें रोग पैदा कर दिया तब शरीरमें तो हाड मांस मलमूत्र ही भरा है। तब वहांपर दुर्गन्ध न आई इसप्रकार विचार करने से यही प्रतीत होता है कि प्रतिष्ठापाठोंमें तो धातु पाषण शोधनमें लिया है और नीराजनामें तन्त्र विवक्षासे लिया है यदि हठात् इस विषय में शास्त्र और युक्ति न मानें अर्थात् हमारी दी हुई युक्तिको भी ठकुन नहीं समझते एकदम अयुक्त ही समझते हैं तो फिर आप लोगोंसे पूछते हैं कि ये सब प्रतिष्ठापाठ और यशस्तिलकचम्पू

आदि ग्रन्थ सब अप्रमाण ठहरते हैं अब ये सब अप्रमाण हैं तब आपलोगोंको चाहिये कि इसके प्रतिपक्षमें प्रमाणीक आर्षग्रन्थ उप स्थित करें क्योंकि इस विषयके जितने प्रतिष्ठापाठ तथा ग्रन्थ हैं उन सबकी एकसी ही पद्धति हैं तब आपको इन सबसे एक विल- क्षण प्रतिष्ठापाठ उपस्थित करना चाहिये और जो वसुबिंदुस्वामी जयसेन आचार्य कृत बाबू दुलीचन्दजी का प्रतिष्ठापाठ आप लोग कदाचित उपयुक्त करैं तो वह भी वसुबिन्दु (जयसेन) आचार्यकृत प्रतीत नहीं होता कारण उसमें अधिवासनाका स्वरूप स्वयं ग्रन्थकार नहीं समझे हैं तो ऐसी भूल आचार्यों की कैसे समझ लें और उसमें आकर शुद्धिका नामतक नहीं अङ्कन्यासमें भेद हैं मन्दिरनिर्माण विधि नहीं अर्थात् नीव लगी है तो कैसे करै सो कुछ नहीं। सूरिमन्त्रका नाम लिखकर छोड़ दिया और सूरिमंत्र लिखा नहीं। क्या आचार्य भी मन्त्रोंको छिपाया करते हैं फिर जितने यन्त्र दिये हैं उनका पूजनविधान नहीं अरहंत प्रतिमा और सिद्ध प्रतिमाका भेद नहीं उनकी पृथक् २ प्रतिष्ठा नहीं वास्तु के ८१ पद होते हैं और उनका विधान होता है सो न करके २५१ कोष्ठका पूजन है सो श्रीदेवशास्त्रगुरु पूजन ही है सो एक पर- मह्रके पदमें ही आ गया। वेदीके गर्भमें रखनेको जो मातृका यन्त्र लिखा है उसमें अष्ट जो कूटाक्षर हैं वे सब दशदिक्पालादि देवों से सम्बन्ध रखने हैं उनके बीज हैं फिर उनका सत्कार क्यों नहीं ? और यदि उनका सत्कार अभीष्ट नहीं तो उनको सन्तोष्य ऐसा क्यों लिखा ? ये सब बाते जब ही मालूम हों जब चार विद्वान्

समक्ष बैठें निर्णय करें। इस प्रतिष्ठापाठकी कृति भी ऐतिहासिक दृष्टिसे प्राचीन नहीं तुलती है। जो शब्द श्रीजिनसंहिता एक संधि आचार्य कृतमें प्राचीनत्व है वह तो प्रतिष्ठातिलकमें भी वसुनंदि लिखित कृतमें भी नहीं है और जो प्राचीनत्व उसमें है सो और प्रतिष्ठापाठोंमें नहीं क्योंकि दशताल प्रतिमाका निर्माण जिनसंहितामें मिलता है वह औरोंमें नहीं।

भववीजांकुरमथना महाष्टप्रातिहार्यविभवसमेता।
दशताला जिनदेवाः शेषा भवन्ति नवतालाः ॥१॥

संसार परिभ्रमणके अंकुरोंको मथनेवाले और दिव्य अष्ट प्रतिहार्य सहित जिनदेव अर्हंतदेवकी प्रतिमा दश तालकी होती है और बाकीके यक्ष क्षेत्रपालादि देवोंकी तथा मिथ्यादेवोंकी नव-तालकी प्रतिमा होती हैं सब अब दशताल प्रतिमाके बनानेवाले ही नहीं हैं दशतालकी प्रतिमाजी १ तो जयपुरमें श्री अमरचन्दजी दीवानके मन्दिरमें श्री चन्द्रप्रभुकी हैं और यह श्रीसूरीपुरके बटेश्वरवाले मन्दिरमे हैं ये हमारे देखनेमे आई है। इससे जो श्री जयसेन आचार्यका प्रतिष्ठा पाठ बताया जाता है वह बाबा दुलीचन्द-वाला है उसमें जो बातें त्रुटिकी दिखती हैं वे हमने आप लोगोंके सामने निवेदन की। उसके विषयमें लोग यह भी कहते हैं कि जयपुरमें पंडितोंसे निर्माण कराया और कोई कहते हैं कि बाबा दुलीचन्दजीने बहुतसी बातें निकाल कर इतना रक्खा उनके साथ हम तीन प्रतिष्ठाओंमें रहे और उससे वेदी प्रतिष्ठाएं हमने कई कराईं परन्तु जो प्रतिष्ठामें आशाधर कृत तथा वसुनन्दि सिद्धान्त

चक्रवर्ती कृतसे कराई उसका फल और महत्व कुछ अधिक अनुभवमें आया इसलिये हमारा कहना है कि अब आप इस प्रकारसे बुरी तरहसे ग्रन्थोंकी अवहेलना करेंगे तो आपके यहां क्या रहता है।

फिर पं० माणिकचन्दजीके भाई पं० नरसिंहदासजी आशाधरजी कृत प्रतिष्ठापाठसे प्रतिष्ठा कराते हैं और उनके हठ भी है कि हम इसी प्रतिष्ठापाठसे प्रतिष्ठा करायेंगे, प्रतिष्ठा कराइये चाहे न कराइये उनका भी इस विषयपर वक्तव्य होना चाहिये। स्वर्गीय श्रीमान् न्यायदिवाकर पं० पन्नालालजी श्री श्रीनेमिचन्द्र श्रीवसुनन्दि तथा श्री आशाधरजी कृत प्रतिष्ठापाठोंसे प्रतिष्ठा कराते थे। मुझे संग पड़ा है और उनके पिता भगवद्लालजी कराते थे और उनके गुरु स्वर्गीय श्रीमान् पं० भागचन्दजी विद्वद्वर पुण्यकीर्ति कराते थे उन दिनोंमें श्रीवसुबिन्दु कृत प्रतिष्ठापाठका नाम भी नहीं जानता था। बाबा दुलीचन्दजीने प्रसिद्ध किया है थोड़ी देरके लिये हम समझ लें कि कुएमें भांग पड़ गई थी वह सबने खाली थी। अब आप लोग आगम प्रमाण उपस्थित कर निर्धार करिये। तुष्यतु दुर्जनन्यायेन इस न्यायसे हमें दुष्ट ही समझ लें जिस प्रकारसे गोबर लिया है उसी प्रकारसे निषेध दिखलाइये अन्य प्रकारसे नहीं। उपर्युक्त विद्वान् उत्तर दे कृतार्थ करें और श्रीमान् पं० मक्खनलालजी न्यायालंकार व श्रीमान् पं० खूबचन्दजी शास्त्री श्रीमान् पं० इन्द्रलालजी शास्त्री व श्रीमान् प० वंशीधरजी शास्त्री न्यायतीर्थ सोलापुर आदि विद्वान्

महोदय सिद्ध करें कि अरहंत भगवान्‌के अभिषेक तथा नीराजना में गोबर कैसे ले सकते हैं जब चार घातियाकर्म नष्ट हो गये जीवन मुक्त अवस्था हो गई फिर उनके अभिषेक और नीराजना- में ऐसे अपवित्र और निकृष्ट गोबर गोमूत्रका क्या काम ? जब कर्म नष्ट हो गये स्फटिकमणि समान परमौदारिक शरीर हो गया उनको क्या तो जादू टोना लगे और क्या ऐसी निकृष्ट अप- वित्रता रह गई जो गोबर गोमूत्र जैसे निकृष्ट पदार्थ उस अप- वित्रताको हटाते हैं और क्या वह उनके पापमलको गालते हैं जिससे उनके लिये वह मंगलद्रव्य समझा जाय ? अरहंत अव- स्थामें अभिषेक और नीराजना ही अनुत्पन्न है। भूतप्रज्ञापन नयकी अपेक्षासे भव्य प्राणियोंके परिणाम विशुद्धि और पुण्य लाभकी हेतुतासे प्रतिमारूप भगवान्‌का अभिषेक और नीरा- जना कही है इसी हेतु भगवान्‌ने गृहस्थोंको पुण्यलाभ निमित्त और जीवोंके उद्धारार्थ नित्य पूजन अभिषेक नीराजना वर्णन किये हैं जिससे अगणित प्राणी अपना हित करते हैं परन्तु इसका अर्थ यह थोड़ा ही होता है कि जो वस्तु पूर्व अवस्थामें सम्भवित होने पर भी जो उत्तर अवस्थामें असम्भवित और अनु- चित अग्राह्य है वह भी इसमें ले ली जाय यह देवके लिये अवर्णवाद है और दूसरी तरफ शास्त्रकी अवहेलना खंडन करनेसे श्रुतका अवर्णवाद है और उभयपक्ष वालोंसे प्रार्थना है कि ऐसे अवर्णवादमें धर्मविसंवादिनी कथामें विद्वानोंको विचार कर पैर रखना चाहिये। फिर कोई यह भी कहे कि धातु

पाषाण शुद्धिमें क्या और शुद्ध वनौषधियें नहीं हैं उनको लेते सो मैं कहता हूं कि गोबरही लेना यह हठ नहीं उन्होंने व्यवहार दृष्टि-से ग्रामादिमें सम्भवित देख लिखा होगा।

अब आप चर्चासागरके विषय सब ही प्रमाण नहीं और सब ही अप्रमाण नहीं परन्तु जब सबही विषय अप्रमाण ठहराते हैं तब और उनपर दिये हुए प्रमाण जिनप्रमाणिक ग्रन्थों के दिये हैं वे सब ग्रन्थ और विषय आप अप्रमाणित ठहराते हैं तब आपके पास क्रियाकांड और अनुष्ठान तथा संस्कारोंके ग्रन्थ कुछ नहीं रहते। आप केवल खण्डन ही खण्डन करना जानते हैं, कोरी युक्तियाँ लड़ाते है, आपके पास उनके अनुरूपमें (मुकाबिलेमे) कोई ग्रन्थ नहीं है। यह कदापि नहीं हो सक्ता कि आप उन ग्रन्थोंका खण्डन करते आवै और उनको जब काम पड़े तब झटसे पोथा लेकर बैठ जावें। जिस पत्तलमें खावैं उसीमे छेद करैं यह बात नहीं बनती। मेरी मां और बांझ ऐसा कभी नहीं होता या तो आप यह कह दीजिये कि प्रतिष्ठादिक क्रियायें तथा गर्भाधानादि संस्कार और वर्ण व्यवस्थादि गृहस्थधर्म ये व्यवहार धर्म कुछ नहीं मानते। हमारे सिद्धान्तसे बाह्य है केवल निश्चयनयका अवलम्बन कर निश्चय, नयके पक्षपाती बन जाइये, तब आप बैठें तो व्यवहारमें और गीत गावें निश्चय नयके सो निश्चय नयपर तो पहुंचे नहीं और व्यव-हारको दिया छोड़ तब इतस्ततोभ्रष्ट होकर उभय नयसे गिरे व्यवहार तो सदोष होताही है "अबुधस्य बोधनार्थं व्यवहारं वर्णय-न्त्यभूतार्थं। व्यवहारनिश्चयज्ञाः प्रवर्तयन्ते जगति तीर्थम्"।

श्रीअमृतचन्द्राचार्यजी पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें लिखते हैं कि किसी एक निश्चयनयसे व्यवहारनय यद्यपि अभूतार्थ असत्यार्थ है तथापि अज्ञानी प्राणीके बोधकरानेके लिये व्यवहारनयका उपदेश करते हैं। व्यवहारनयको भी कोई एकान्तसे अभूतार्थ कहते हैं, परन्तु व्यवहार दृष्टिसे वह भी भूतार्थ ही है सत्यार्थ ही हैं। जैसे अल-ङ्कार-दृष्टि पर्याय दृष्टिसे किसीने कह दिया कि मानो बगीचा हँस रहा है तो यह अलङ्कार है। बगीचा कोई मनुष्यादिककी भाँति सैनी-पञ्चेन्द्रिय मनसहित जीव नहीं जो हँसे। एक साहित्यका विषय अनुप्रेक्षालङ्कारसे हँसना बताया गया है, तो यह हंसना बगीचेका सैनीपञ्चेन्द्रियके कार्यकी तुलनासे अभूतार्थ है असत्यार्थ है परन्तु क्या यह सर्वथा असत्यार्थ ही हैं सो नहीं साहित्यके अलङ्कार दृष्टिसे अर्थात् पर्याय दृष्टिसे यह सत्यार्थ ही है। क्यों कि जब किसी मनुष्यको इन्द्रियजनित सुखकी सामिग्रीका मिलाप या सुख होता है तब उसे सुख गुणका कार्य आह्लादन प्रसन्नता चित्तमें खुशी होती है तभी मुख विकसित करके वह हंसता है उसी प्रकार बगीचेमें भी समय २ पर सिञ्चन आदि सुखसामग्री-का मिलाप उन बगीचेके वृक्षोंको एकेन्द्रियजीवोंको हुआ है जिस से पैरोंसे पानीरूप लेपाहारको लेनेसे वे वृक्ष हरे भरे पाये हैं सुखी हुये हैं, फूले हैं। यही तो बगीचेका हँसना है सो क्या वह झूठा है? सत्यार्थ ही है। जो लोग अलङ्कारको झूठा समझ लेते हैं उन्हें इधर भी दृष्टि देनी चाहिये कि नय विभागसे किस तरह पदार्थ पलट जाता है। वृक्षोंके समुदायकोही बगीचा कहते हैं इतने कहने

का तात्पर्य यह है कि व्यवहार निर्मूल झूठा ही नहीं होता किसी दृष्टिसे वह भी सत्य ही है। आर्यसमाजियोंकी तरह नहीं बनना चाहिये कि मूर्ति पूजनका खण्डन भी करें और दयानन्दजीका फोटो भी रक्खें। हम पूछते हैं कि जुगुलकिशोर मुख्तयार, सूर्यभानु वकील नाथूराम प्रेमी बा० शीतलप्रसाद आदिने आदिपुराण त्रिवर्णाचार आदिका खण्डन भी कर डाला और उन्हीं सुधारकोंके गुरु बा० शीतलप्रसादजी उसी त्रिवर्णाचारसे जगह २ यज्ञोपवीत विधान करके जनेऊ पहराते फिरते हैं और यह भी न किया तो एक अपना ही 'इधरकी ईंट उधरका रोड़ा भानुमतीने कुनवा जोड़ा'की तरह इधर उधरके ग्रन्थोंसे काट छांटकर ग्रन्थ प्रतिष्ठापाठ बना डाला। तब कहिये हम आधुनिक विद्वानोंकी बात अविचारितरम्य मानें कि पूर्व विद्वानोंकी बात मानें। जो सर्वज्ञ कथित आगम है वह हजारों वर्षोंसे अविच्छिन्न रूपसे चला आता है सम्भव है कि किसी अल्पज्ञानी व किसी रागद्वेषी भेषीके सम्बन्ध से गलती हुई हो उसको पहले तो ऊहापोहसे विचार करें। फिर पूर्व विद्वानोंकी बात असंगत दीखे तो और उनसे पूर्व आचार्योंके आगमसे कथनसे अनुमानादि प्रमाणसे, प्रकरणसे व नयविभागसे बहुज्ञानियोंके निर्णयसे किसी प्रकारसे भी सिद्ध न हो, तो उसे असंगतहेय समझलो ठीक है, परन्तु उस एक असंगत बातसे सारा ग्रन्थ तब भी असंगत अप्रमाण नहीं होता विद्वान यही विचारेंगे कि किसीने मिला दी होगी परन्तु वह मिलादी हुई कैसे बताई जायगी जो दश ग्रन्थोंमें मिलती है। तब कुछ माथा ठंडा करके सूक्ष्म

विचारसे विचारा जावगा कि ऐसा क्यों कहा किस प्रकारसे किस हेतुसे ऐसा कहा है। कहनेवाला कुछ रागभावसे, द्वेषभावसे, विषयोंकी आशासे लिखता है क्या यह लिखना युक्तियुक्त है कि युक्तिशून्य है। इतना विचारकर असंगत ठहराना चाहिये। श्रीमान् पं० माणिकचन्दजी न्यायाचार्य व श्रीमान् पूज्य वर्णीजी गणेशप्रसादजी, पं० वंशीधरजी सिद्धान्तशास्त्री इन्दौरने जो सम्मति दी है हम प्रार्थना करते हैं कि आपलोग प्रतिपक्षमें आगम प्रमाण उपस्थित करें कि नीराजना तथा आकर शुद्धिमें गोबर नहीं लिया है या नीराजना तथा आकर शुद्धिमें गोबरका निषेध अमुक शास्त्रमें किया है। यह युक्ति हमारे चित्तको सन्तुष्ट नहीं करती कि मल है अब कि अष्ट शुद्धियोंमें व्यवहारमें ले रहे हैं। जिस दृष्टिसे उसको लिया हैं उसी दृष्टिसे आकर शुद्धि और नीराजनामें समझ लेना चाहिये।

कोई यह कहे कि ये प्रतिष्ठापाठ प्रमाणीक आचार्योंके नहीं सो भी बात नहीं मालूम होती। जब श्रीवीर भगवान्‌को मोक्ष जाने पर और विक्रमराजाके स्वर्ग जाने पर तथा श्री भद्रबाहुस्वामीके स्वर्ग होने पर प्रजा स्वच्छन्दचारिणी होने लगी तब उस समय आचार्योंने मुनियोंके चार संघ संगठित किये सो ही नीतिसार समुच्चयमें लिखा है—

तदैव यतिराजोपि सर्वनैमित्तिकाग्रणीः।
अर्हद्बलिगुरुश्चक्रे संघसंघट्टनं परं ॥१॥

सिंहसंघो नन्दिसंघः सेनसंघो महाप्रभुः ।
देवसंघ इति स्पष्टं स्थानस्थितिविशेषतः ॥२॥
गणगच्छादयस्तेभ्यो जातः स्वपरसौख्यदः ।
नह्यत्र भेदो कोप्यस्ति प्रव्रज्यादिषु कर्म्मसु ॥३॥

उसी समय यतिराज सर्वनिमित्तज्ञानको जाननेवाले श्री अर्हद्बलि आचार्यने संघका संगठन किया। उन्होंने चार संघ सिंहसंघ नन्दिसंघ सेनसंघ देवसंघ ये चार संघका संगठन किया। उन्होंके गण गच्छादिक भेद हुये, परन्तु दीक्षा आदिकमें कुछ भेद नहीं था। उसके बाद लिखा है कि कुछ काल बीतने पर श्वेताम्बर हुये इन्होंने अपनी अपनी बुद्धि अनुसार मनघड़न्त शास्त्र रचे और सब जैनाभास है इसलिये—

चतुः संघे संहितायां जैनविम्बं प्रतिष्ठितं ।
नमेन्नापरसंघीयं यतो न्यासविपर्ययः ॥

श्री मूलसंघके इन चार आचार्योंके संघका संहिताओंसे प्रतिष्ठा कराई हुई श्रीजिन प्रतिमाओंका लेना और उनका पूजन नमस्कारादि करना और दूसरे संघवालोंको नहीं लेना क्योंकि उन्होंमें न्यास विपर्यय है। इन्हीं चार संघोंके आचार्योंमें श्रीवसुनन्दि जिनसेन आदि हैं और वसुनन्दि प्रतिष्ठातिलकसारका उद्धार आशाधारजीने किया इसलिये प्रायः सब प्रतिष्ठापाठोंमें पाषाण धातुकी आकर शुद्धिमें गोबर लिया है। अब आकर शुद्धिमें गोबर लेना न लेना अपनी इच्छाधीन है। हमने कहीं नहीं लिया

है परन्तु प्रतिष्ठापाठों पर कुठाराघात करना असह्य और अन्याय है। प्रतिष्ठाका काम करानेवाला शास्त्रका आश्रय छोड़ कहां रहै ! क्या खण्डन करनेवालोंके वाक्य सर्वज्ञ वाक्य मान लें। शास्त्रकी परीक्षा शास्त्रसे होनी चाहिये सो ही सुभाषितार्णवमें लिखा है।

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते निघर्षणच्छेदनतापताडनैः ॥
तथा हि धर्मो विदुषा परीक्ष्यते श्रुतेन देवेन तपोदयागुणैः ॥१॥
देवेन देवेहितमाप्तकामैः शास्त्रेण शास्त्रं परिमुच्य दर्पं ॥
परीक्षणीयं महनीयबोधैः धर्म्मेण धर्म्मो यतिना यतिश्च ॥२॥

जैसे चार तरहसे सुवर्णकी परीक्षा की जाती है एक तो घिसनेसे दूसरे छेदनेसे तीसरे तपानेसे चौथे पीटकर तोड़नेसे उसी प्रकार विद्वानोंको धर्मकी शास्त्रसे देवसे तपसे दयासे इन चार उपायोंसे परीक्षा करनी चाहिये। देवकी परीक्षा देवसे शास्त्रकी शास्त्रसे धर्मसे धर्मकी और मुनिकी मुनिसे परीक्षा करनी चाहिये। सो शास्त्रकी परीक्षा आर्ष आगमसे होनी चाहिये इस विषयके आर्षग्रन्थमें इस विषयमें पाषाण धातु शुद्धि तथा नीरा-जनामें गोबर निषेध मिलना चाहिये तो फिर किसकी हट है इस प्रकार गोबरके विषयमें जो मैं समझा हूं वैसा मैंने अपना मन्तव्य प्रकाशित किया।

अब श्रीमुनिराजके रहनेके विषयमें इतना कहना है कि साधुओंके भगवान्ने दो मार्ग बतलाये हैं एक उत्सर्गमार्ग और एक अपवाद मार्ग। उत्सर्ग मार्ग तो यही है कि श्रीमुनिराज वनमें रहैं परन्तु अपवादमार्गका भी अवलंबन हीन शक्तिमें होता है।

मुनिपद धारण करे शरीरादिका कुछ ठिकाना नहीं। कभी सहजोर होता है और कभी कमजोर हो जाता है। शरीर सहजोर होनेसे वर्षोपवासी मासोपवासी पक्षोपवासी होते हैं और कमजोर हो जानेसे निरन्तर भी आहार करते हैं। सहजोर होनेसे नीरस भोजन करते हैं और कमजोर होनेसे सरस भोजन करते हैं। ज्ञान ध्यान तपमें समर्थ होने निमित्त। इसप्रकार उत्सर्गसे अपवाद और अपवादसे उत्सर्गमार्गका अवलम्बन हो वो ही करे हैं इसी तरह यह बात है कि उत्सर्ग तो यही है कि श्रीमुनिराज वनमें ही रहैं चौहटे में पर्वत पर वृक्षोंके कोटरोंमें गुफाओंमें रह कर निर्भय हो कर उग्रउग्र तपश्चर्या करते हैं और हीन शक्ति होने पर वसतिका जिनमन्दिर आदिमें भी रह जावें परन्तु उपदेश और प्रशंसा उत्सर्गमार्गकी ही है अपवादमार्ग प्रशंसनीय नहीं है क्योंकि मुनिपदकी सिंहवृत्ति है वह कमजोरोंका पद ही नहीं है तथापि सहजोरी कमजोरी उदयाधीन है यदि मुनिपद धारण कर कर्मके उदयसे हीन शक्ति हो जाय तो जिस प्रकारसे निर्वाह होता दीखे उस प्रकारसे मुनिपदकी तो रक्षा करनी ही होगी दूसरी बात यह है कि कोई काम करिये उस कामके करनेसे ही उसमें जो कठिनाइयां पड़नी हैं उनका अनुभव होता है, परन्तु जो न तो स्वयं विवाह किये और न किसीकी बरातमें गये उन्हें क्या अनुभव कि विवाहमें क्या स्वांग भरने पड़ते हैं ऐसे लोग दूरसेही मनसूबा लड़ाया करते हैं जब वह काम करें तब पता लगे जब एक उपवास सोलह प्रहर

का करलिया जाय तब पता चलता है कि उपवासमें क्या क्या कमजोरी सहजोरी होती हैं, क्या हालत होती है क्या क्या करने पड़ता है व्रत धारण नहीं करते किस किस जगह मौन रहने होता है किस प्रकार ध्यान अध्ययन आसन आदिसे धर्म साधन होता हैं कौन कौन गलती हो जाती है यह बात नवीन मुंडन किये मनुष्यसे हजार समझानेपर भी गलती होती है और उन्हें अपवाद मार्गमें आनाही होगा परंतु शास्त्रलिखित तो उत्सर्ग मार्ग ही है उपदेश शास्त्रमें उत्सर्गमार्गका ही होता है जिससे कोई दोष न रहे यदि उपदेश अपवाद मार्गका किया जाय तो वह मार्ग निर्दोष कब रह सक्ता है वहाँतो सदोषका ही विधान होगा निर्दोष अवस्थामें कब पहुंच सक्ता है और उत्सर्ग मार्गके उपदेशमें कोई तो निर्दोष अवस्थापर पहुंचेगा। साधक अवस्थामें दोष होनेपरभी साध्य अवस्थामें निर्दोष पना रहेगा तब अपवाद मार्गमें दोष लगनेपर भी ध्येय निर्दोष ही रहा अपवाद मार्गके उपदेशमें ध्येय निर्दोष नहीं रहता शिथिलाचारकी पुष्टि होती है उत्सर्ग मार्गके उपदेशमें अपवादमार्ग होनेपर भी शिथिलाचारकी पुष्टि नहीं होती परन्तु उत्सर्ग मार्ग साधक अवस्थामें अपवादमार्ग हो ही जाता है। श्री गुणभद्राचार्यजी आत्मानुशासनमें लिखते हैं कि जो मुनि सायंकालमें ग्रामके निकट आयकर बसे हैं सो मृगकी नाहीं भय-युक्त हैं यह बड़ा खेद है। यहांपर ग्रामके निकट सामको आजानेमें आचार्यप्रवर खेद प्रगट करते हैं तो उस समय नवमी शताब्दीमें दिगम्बर मुनि ग्रामके निकट चैत्यालयादिमें रहने तो लगे थे तो

मुनिपदधारी ऐसो महाघोरा भट्टारक तो नहीं थे मुन्याभास तो नहीं थे किन्तु कमजोरी और भय होकर खेद प्रगट किया है। मुनियोंके लिये ग्रामके निकट बसना रात्रिमें अपवाद है परन्तु होने तो लगा था उस समय प्रशंसनीय नहीं था।

संप्रत्यत्र कलौ काले जिनगेहो मुनिस्थितिः।
धर्मश्च दानमित्येषां श्रावका मूलकारणम्॥

इस श्लोकमें जो श्रीमान् पं० मक्खनलालजी लिखते हैं और यहां कलकत्तेमें विवाद हुआ था कि 'जिनगेहे मुनिस्थितिः' ऐसा पद है सो नहीं। जो कोई टीकाकारने भी लिखा होगा तो वे संस्कृत टीकाकार भी कुछ भी भट्टारकका ही पक्ष लेकर लिखा होगा ऐसा हम समझते हैं। 'जिनगेहो' ऐसा प्रथमान्त पद करनेपर भी जिनचैत्यालयमें मुनि नहीं रहते हैं ऐसा निषेध नहिं होता। उपर्युक्त श्लोकका अर्थ यह है कि वर्तमान कलिकालमें जिनमन्दिर और मुनियोंका रहना धर्म और दान इन सबके मूल कारण श्रावक हैं अर्थ यही है इसमें कोई सन्देह नहीं परंतु इसका विशेष अर्थ यह ध्वनित होता है साहित्यमार्गसे कि देखो कलिकालका महिमा इस समय जिनमन्दिरका होना मुनियोंका रहना धर्म तथा दानका प्रवर्तना श्रावकोंके अधीन रह गया, यह भी खेद ही प्रगट किया क्योंकि तृतीय चतुर्थ कालमें तो जैनधर्म धारियोंका क्षेत्र बड़ा था करोड़ों जैनी थे और नहीं भी थे तो जीव भद्रपरिणामी होतेथे सो मुनिराजके तपोबलकी विशेषतासे नवीन जैनी शीघ्र हो जाते थे। उपदेश दिया और योग्यता दातारकी होगई उनके श्रावकोंका आधीनपना नहीं

था अब तो जिस ग्राममें श्रावक न हों तो आहार ही नहीं हो सका तब मुनिपद भी गृहस्थाधीन हो गया यह भी खेद ही प्रगट किया। मुनियोंकी सिंहवृत्ति सो भी गृहस्थोंके आधीन होने पड़े। यद्यपि मुनियोंका और गृहस्थोंका तृतीय चतुर्थ कालमें भी सम्बन्ध था और सदैव सम्बन्ध रहेगा परन्तु जैसी इस समय श्रावकोंका जैनधर्मियोंका कर्मक्षेत्र है अर्थात् कम है अथवा जीव वक्र परिणामी हैं वैसे पहले नहीं थे अब इसमें हमारे भाइयोंको समझ लेना चाहिये कि इस विषयमें उभय पक्षके प्रमाण उत्सर्गमार्ग और अपवाद मार्गके कथनके हैं, टंटा करना निरर्थक है इतना अवश्य विचारना चाहिये कि—अपवादमार्ग होता है परन्तु अपवाद मार्गका उपदेश नहीं करना चाहिये उसमें शिथिलता होती है मुनियोंको वनमें व वसतिकामें ही रहना चाहिये। आगन्तुक मुनिराज तुरन्त आये हुये जिन मन्दिरादिमें ठहर गये तो रात्रि व्यतीत कर चले जाते थे।

मन्त्र जाप करनेमें जो मूंगा मोती सुवर्ण स्फटिक हीरादिककी जापसे जो विशेष विशेष उपवास फल लिखा है वह बेशकीमती-के कारणसे नहीं किन्तु विशुद्ध द्रव्य परिणामोंकी विशुद्धताका कारण होता है इस हेतुनासे विशेष फल है। काठ सूत्र आदि द्रव्य अस्पृश्य पुरुषके छूनेसे धोने पर छूते हैं और चांदी सोना आदि बिना धोये ही छूते हैं तो काठ सूत्रकी अपेक्षा सोना हीरा आदि द्रव्य व्यवहारमें कुछ शुद्ध मानो है इस अभिप्रायसे परिणाम विशुद्धताका कारण होता है। दूसरे चर्चासागरमें जो अन्य मतमें दूध मिट्टी रुद्राक्ष तथा हाथीदांत आदि हड्डीकी मालाओंके

निषेधार्थ सूतकी मालाकी विशेष श्रेष्ठता बतलाई है कि सूतकी माला सदा सुखकारी है और सोने चांदी मोती मूंगा आदिकी मालायें हजारों उपवासोंके फलको देती है ऐसा कथन अन्यमतमें ली हुई रुद्राक्ष हाथीदांतकी मट्टीकी मालाओंके निषेधार्थ सूत्र सोने चांदी आदिकी मालाओंकी विशेष उपयोगिता दिखलाई है, कुछ वेशकीमतीके कारण नहीं, ऐसे कथन उपलक्षण मात्र होते है। जैसे कागलोंसे (कौओंसे) दहीकी रक्षा करना इसका अर्थ यह नहीं होता कि कुत्ते आदिसे दही खवालेना, केवल कौओंसे बचाना यहां 'काग' शब्द उपलक्षण मात्र है उसी प्रकार यहां उपवास शब्द श्रेष्ठपना जतानेमें उपलक्षण मात्र है कुछ नियमित नहीं और न वेशकीमतके कारण दिखाया है, किन्तु हड्डी आदिकी अपवित्र मालाओंके निषेधार्थ है सो ही इस वाक्यसे सूचित होता है कि हजारों उपवासका फल देता है। यहां हजार दो हजार लाख आदिको निश्चित नहीं करता तारतम्यता नहीं ऐसा छोटी २ बातों पर विद्वानोंको ध्यान नहीं देना चाहिये तथा इन मालाओंकी विशेष उपयोगिता निदानसे किये हुये मन्त्रादिक कार्योंमें ली है जैसे लक्ष्मी लाभमें मूंगाकी माला सुवर्णकी माला स्तम्भनमें शत्रु-के उच्चाटनादिमें कमलगट्टादि काले दानोंकी माला मोक्षार्थीको शान्तिकर्म धर्मादि कार्योंमें स्फटिकके सूत्रादिकी माला इसी प्रकार चारों दिशाओंके मुख करनेका फल है। विशेष उच्चाटनादि कामोंमें ही अशुभ दिशायें लेते हैं, शुभ कार्योंमे शुभ दिशायें ही ली जांयगी यदि कोई अन्यथा करेगा तो अवश्य अन्यथा फल

होगा। इसी प्रकार बीजाक्षर संयुक्त जो पूजन हैं: कलिकुण्डादि पूजन अथवा ऋषिमण्डलादि पूजन सिद्धचक्रादि पूजन जो अना-हत मन्त्रादि तथा छह अक्षर संयुक्त जो बीजा अक्षरसे युक्त पूजन हैं वे सब अवश्य अन्यथा करनेसे अवश्य अन्यथा फल देते हैं। जो लोग मन्त्र शास्त्रसे अनभिज्ञ हैं अज्ञान हैं उनको इस विषयमें टांग नहीं अड़ानी चाहिये। जैसे किसी पुरुष को गाली देनेसे उसको क्रोध उत्पन्न होता है तथा किसीको आशीर्वाद देनेसे उसकी आत्मा सन्तुष्ट होती है। जैसे गाली रूप अपशब्द और आशीर्वाद रूप शुभशब्द प्राणीको हरकत पहुंचाते हैं इसी प्रकार मन्त्र भी जड़ तथा चेतन पदार्थोंमें एक विलक्षण क्रियायें उत्पन्न करते हैं। उसी प्रकार निदानपूर्वक की हुई पूजा भी दक्षिण आदि दिशाओंके सम्मुख करनेसे शुभकार्य निमित्त-की हुई पूजा अशुभ फल देती है परन्तु वही अशुभ कार्य निमित्त-की हुई पूजा अशुभ फल देती हुई भी करनेवालेके अभीष्ट सिद्धि कर देती है। क्योंकि वह तो ऐसा दूसरेके लिये अनिष्ट चाहता ही था यह सब निदान पूर्वक की हुई पूजाका विषय है। चर्चासागर के संग्रहकर्त्ता चंपालालजीने इधर उधरसे विषय संग्रह करके लिख दिया परन्तु यह विषय कहां का है और कहां लिखना चाहिये ऐसा विचार न कर लिख दिया है यही लेखन शैलीकी गलती है इसीसे जन साधारणको यह ग्रंथ भ्रम उत्पन्न कर देता है यह निदान पूर्वक की हुई पूजा करनेवालेके अभीष्टको तो सिद्ध कर देती है परन्तु सातिशय धर्म जो संसारसे छुड़ानेवाला

है उसको उत्पन्न नहीं करती किन्तु कोई कोई अगाढ़ अधर्म भी उत्पन्न कर देती है क्योंकि निदान पूर्वक की हुई धार्मिक क्रियामें परिणाम मलिन रहता है, निर्वाञ्छक (निरीहवृत्ति) पनेसे की हुई पूजा तथा जपमें जो परिणामोंकी विशुद्धता है वह इसमें नहीं। इससे निदानपूर्वक (स्वार्थ) काममें मलिनता है। इसीसे भगवान्ने निदानपूर्वक कामको यद्यपि हेय बतलाया है तथापि साधारण संसारी जन संसारमें जिस दुःखसे दुःखित होते हैं वर्तमानमें उसी दुखःसे निवृत्त होना चाहते हैं और संसारके सुखको ही सुख समझते हैं, उन्हें सच्चे आत्मीक सुखका बोध ही नहीं। सच्चे ही सुखका क्यों अपने आत्माकाही बोध नहीं वे अपने आपेमेंही नहीं। जैसे बेहोश मनुष्यको ठंडा उपचार कर होशमें लाया जावे तब जिससे उत्पन्न हुई बेहोशी उसके त्यागका उपदेश दिया जाय जिससे आगामीमें बेहोश न हो उसी प्रकार प्राणियोंके संसारीक वर्तमान दुःखके दूर करने निमित्त मणि मन्त्र तन्त्र औषधियोंके प्रयोगका वर्णन किया गया है। ऐसी अवस्थामें निदान पूर्वक धार्मिक क्रिया भी किसी अपेक्षा उपादेय मान ली जाती है। उस निदान पूर्वक क्रियामें ये विचार अवश्य करने होंगे। सो ही आशाधरजी प्रतिष्ठा पाठमें लिखते हैं कि—

दिक्कालमुद्रासनपल्लवानां भेदं परिज्ञाय जपेन सुमंत्री।

नचान्यथा सिद्ध्यतितस्य मंत्रः कुर्वन् सदातिष्ठतु जाप्य होमं ॥१॥

दिशाकाल मुद्रा(आकृति) आसन पल्लव स्वाहा सुधादि इनका भेद

जान कर मन्त्रोंको जपे अन्यथा वह मन्त्र सिद्ध नहीं होता और कदाचित् अन्यथा फल भी कर देता है।

इस मान्त्रिकतान्त्रिक पूजादिकी बातको पूजा सामान्यमें लेना बहुत भूल है लिखने और समझनेवाले दोनोंकी ही भूल है इन बातोंको विद्वान् तो समझ लेते हैं कि ये बातें अमुक स्थलकी हैं परन्तु जनसाधारण तो समझते नहीं। मेरी समझमें पन्नालाल जीने संस्कृतमें संग्रह किया उसको तो विद्वान् लोग अर्थ समझ कर लगाते परन्तु हिन्दीने और सगाबी की हिंदीमें खुलासा करना था सो नहीं किया नग मुंदरी ही में जड़ा जाता है स्थल देख कर ही अर्थ लगाना उचित होता है "सम्भव व्यभिचाराभ्यां स्याद्विशेषणमर्थवत्" जहां जैसा अर्थ सम्भवित हो और कोई व्यभिचार न आता हो दोष न होता हो वही अर्थ संगत और उचित समझा जाता है सो नग जड़ना जनता साधारण नहीं जानती। तात्पर्य यह है कि वह संग्रह करने का प्रयास पबलिक (जनसाधारण) के योग्य नहीं। भावार्थ निरीह वृत्तिसे (निर्वाञ्छकपनेसे) जो नित्यनियमादि पूजन किये जाते हैं उसमें दिशा आदिके नियमोंकी कोई पाबन्दी नहीं है मनुष्यकी उत्कट भक्ति और पञ्चभूत पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश इनकी पवित्रताकी ही आवश्यकता होती है। जैसे अञ्जन-चोरके जब कण्ठगत प्राण रह गये थे और वह णमोकार मन्त्रका स्मरण भी भूल गया था तब ताणं ताणं ताणं सेठिवचन परि-माणं इतने मात्रसे ही उसको स्वर्ग प्राप्त हुआ था यहां भावकी

हो मुख्यता की गई और नहि मन्त्रोऽवण्यूनो विहन्ति विधवेदनां यहां पर श्रीसमन्तभद्रस्वामी द्रव्यको ही मुख्य कर कह रहे हैं। सो प्रति दिनके नित्य नियमके निर्वाचश्लोक पूजनमें भावका हा मुख्यता है। वहां न दिशा न काल और न मुद्रा न आसन कोईका विचार नहीं कोई शिर उघाड़े और कोई पूर्व और कोई पश्चिम और कोई अन्य दिशाओंके तरफ मुख करके पूजन कर रहे हैं वहां भगवान्‌की भक्ति ही पार उतारती है सो ही बिनोदीरामजीने लिखा है "भक्ति जिनराजकी पार उतारती" सो दिशाओंका विवेचन पूजामें पूर्व उत्तर ही मुख्यतया लेते हैं और भक्तिभावकी उत्कटतामें कोई किधर ही मुख करे तो कोई विचार नहीं दोष नहीं। कोई कोई भगवान्‌की सम्मुखतामें किसी दिशाके तरफ मुख हो भगवान्‌की सामने होनेसे दोष नहीं रहता ऐसे भी लेते हैं। जैसे कवितामें गण अगणका विचार होता है परन्तु यदि आदिमें श्री आदि मंगल वाचक शब्द आ जावे तो गण दोष नहीं रह जाता ऐसा मानते हैं। इसी प्रकार यह भी समझना चाहिये। और तिलक बिना पूजा करना निषेध है लिखा है उसका ऐसा तात्पर्य है कि कि सूतक पातकादिमें भगवान्‌का पूजन नहीं करते और उस समय मनुष्यका परिणाम और आकृति सब शोकाविष्ट और मलिन है और भगवान्‌का पूजन सदा मंगलरूप है तिलक मंगल सूचक चिन्ह है और चारों वर्णोंको जुदे जुदे आकारमें चर्चासमाधानमें भूधरदासजीने भी लिखा है—

अर्द्धचन्द्रातपत्रांहि पीठचक्रं तथैव च।
तिलकश्चेति षोढा स्यात् चन्दनेन प्रलेपनं ॥१॥

अर्द्धचन्द्रमसौपाण्डुशिलासंकल्प ते खलु ।
या पूजातीर्थकृज्जन्ममज्जानम्भोधिरुच्चकैः ॥२॥
आतपत्रं जिनेन्द्राणां छत्रत्रयमिदं स्मृतम् ।
अंह्रिस्तु मानस्तंभः स्यात् पीठं सिंहासनं मतम् ॥३॥
चक्रंतु धर्मचक्रं स्यात् तिलकन्तु तदल्पकम् ।
एतत्सर्वेश्च संधार्यं पूर्वं भाले यथोचितम् ॥४॥
अर्द्धचन्द्रातपत्रं वै क्षत्रियाणामिति स्मृतम् ।
आतपत्रं पीठश्च ब्राह्मणानां प्रकीर्तितम् ॥५॥
सुशूद्रस्य भवेच्चक्रं परस्य तिलकं भवेत् ।
अर्हतांह्रि ललाटे च सिद्धानां हृदये तथा ॥६॥
आचार्याणाश्च श्रीकण्ठे पाठकानां दक्षिणे भुजे ।
साधूनां वामभागे च पञ्चस्थानं प्रकीर्तितम् ॥७॥

अर्द्धचन्द्र १ आतपत्र २ अंह्रि ३ पीठ ४ चक्र ५ तिलक ६ यह छः प्रकार तिलक वर्णन किया है। अर्द्धचन्द्राकार जिसको खोर बोलते हैं। इस आकारका तिलक भगवान्‌के जन्म समय स्नानकी पाण्डुक शिलाको दर्शाता है। आतपत्र छत्रत्रयको दर्शाता है। अंह्रि मानस्तम्भ को प्रकट करता है और पीठ सिंहासनको दिखलाता है और चक्र धर्मचक्रको और टिपकी तिलक धर्मचक्रके आधेको दिखलाता है। ये सब भगवान्‌के पूजन तथा सेवाके पहले स्नान करके लगाने चाहिये। अर्द्धचन्द्र आतपत्र क्षत्रियोंको, आतपत्र पीठ ब्राह्मणोंको, छत्र मानस्तम्भ वैश्योंको, सत् शूद्रोंको धर्मचक्र तिलक गोल

टिपकी लगानी चाहिये और यह चन्दन तिलक ललाट हृदय दक्षिण भुज वामभुज कण्ठ पञ्च परमेष्ठीकी उपासकता दिखानेके लिये इन पांच स्थानोंमें लगाना चाहिये। ललाटमें अर्हंत, हृदयमें सिद्ध, दक्षिणभुजमें उपाध्याय वामभुजमें साधु और कण्ठमें श्रीआचार्यकी उपासकता दिखाते हैं। इसप्रकार इन श्लोकोंका अर्थ है। यह छह प्रकारके तिलक मङ्गल सूचक और प्रसन्नता दर्शक और पञ्च परमेष्ठीकी नियमसे पूजा करनी चाहिये इसके दर्शक पञ्च स्थानमें चन्दनानुलेपन है। यदि गृहस्थको जैसे भगवान्‌का नित्यनियम पूजन सूतकपातकादि दिनोंको छोड़ अन्य समस्त दिनोंमें हमेशाह आवश्यक हैं तो पूजनके पहले पूजनसूचक तिलक भी आवश्यक है।

जैसे जनेऊ पूजकको आवश्यक है वैसे हो तिलक भी आवश्यक हैं यह बाह्य निमित्त है यदि कोईने भूलसे या जल्दीमें आतुरतासे या चन्दनके निपट जानेसे या कोई अन्य कारणसे न लगा सका तो पूजा करना व्यर्थ तो न होगी परन्तु एक नियम भंग होता है। यह नियम भंग और प्रमाद तथा अनावश्यक बुद्धि उस प्रथाको धक्का लगाती है और फिर वह प्रकारही चला जाता है जैसे कुछ दिनोंसे अंतरंग रत्नत्रयकी अयोग्यता देख बाहिरो रत्नत्रय सूचक जनेऊके डोरेको अनावश्यक समझ उपेक्षा (वेपरवाही) कर दो तो शूद्रोंके समान अपन भी लड़कड़ियेके घोड़े समान वेलगाम के निरर्गल प्रवृत्ति वाले बनगये। जब गलेमें जनेऊ डाला जाता था

तब व्रत बंध किया जाता था तब उस डोरेके डालनेसे डोरे डालते समय ब्रह्मचर्यादि व्रतोंमें वचनबद्ध करनेसे कुछ अपने वचनका लिहाज तो रहता था सब ही तो भ्रष्ट नहीं हो जाते थे अब डोरे बिना तो वे वचनसे भी बंधे नहीं रहे और एक बाहना हो गया। म्हारेसे तो पले कोई ना विवाहके समय भी गलेमें जनेऊ नहीं डालते और उत्तर मिलता हैं कि उससे पलेगा नहीं। तुमने स्वदारसन्तोष व्रती बनानेके लिये लड़केका विवाह किया हैं कि व्यभिचारी बनानेके लिये। उस विवाहिता स्त्रीको धर्मार्थंपत्नी धर्मपत्नी धर्मके लिये पत्नी बनाया है अब उसे वचनसे बद्ध हो नहो किया सात सात वाक्योंसे जो व्रतबन्ध निबन्ध सुचक कहे जाते हैं तब वह किस प्रकार गृहस्थ बनेगा और वीर्य रक्षा कर किस प्रकार कुल धर्म सन्तान बढ़ाने वाला होगा।

ये धर्मके बन्धन जीवके हितके लिये हैं। यदि उनको कण्टक समझ लियेजांय तो अपनाहो अहित है और पैरों कुल्हाड़ी मारना है इसी हेतु ये बाह्य आलम्बन व्यवहारधर्ममें लिये गये हैं कि संसारी प्राणी अज्ञ होता है स्वयं धर्ममें प्रवृत्त नहो होता उसे किसी अवलम्बनसे धर्ममें लगाओ तो धर्ममें लगजायगा सो ही श्री पद्मनन्दि आचार्य नित्यनियम पूजनमें लिखते है —

आलम्बनानि विविधान्यवलम्ब्यवल्ग।
भूतार्थयज्ञपुरुषस्य करोमि यज्ञम्॥

अनेक आडम्बरो का अवलम्बन कर सच्चे पूज्य पुरुषकी पूजा-

करता हूँ यह तो तिलकोंका विवेचन हुआ और पूर्वादि दिशा ओंके विधानका पूजादिमें हमने सारांश ऊपर कहही दिया है।

जो श्राद्धका विषयादि है वह परमार्थ विषय नहीं हैं इसलिये मोक्ष मार्गमें उपादेय नहीं है परंतु उपचार विनयके किञ्चित उपचारमें सांसारिक उपकारी कृतज्ञता सूचक सांसारिक व्यवहार धर्ममें उपादेयताकी अपेक्षासे जहां कहीं ग्रन्थोमें श्राद्धका उल्लेख है उसका भी यथार्थ रूप और उपयोगिता न दिखाकर उसको धार्मिक रूप देकर लिखा है इसलिये असंगत है परन्तु उसकी भी तथ्यता हमलोंगोंको अवश्य जानना चाहिये प्राचीन समयमें वृद्ध पुरुषोंकी और महान पुरुषोंकी पूजा किया करते थे। वृद्ध और महान पुरुषोंमे पूज्यत गुणोंसे लो जाती थी गुण कई प्रकारसे लिये जाते हैं। कहीतो परमार्थिक आध्यात्मिक गुण लिये जाते और कहीं व्यवहारिक संसारमें उपकार करने वाले कृतज्ञता पथ प्रदर्शक। पारमार्थिक आध्यात्मिक आत्मिक सच्चे सुख पथ प्रदर्शक आत्माके सम्यग्दर्शनादिक गुण जो मोक्षमार्ग प्रदर्शक हैं वे तो पारमार्थिक है और जो संसारमें उपकार करनेवाले सांसारीक सुख हित पथ प्रदर्शक जो प्रायः परमार्थ गुणोंके साधक भी होते हैं। जो परम्पराय कारण कोटिमें आजाते हैं। जैसे बालकोंको शिक्षादेने वाले तथा बालकोंका हित चाहने वाले संसारमें तीनहीं होते हैं। माता पिता और गुरु यहां परमार्थ तो धर्म गुरु निर्ग्रन्थ वीतराग मुनिही लेने और व्यवहारमें विद्या व्यवहारमें माता पिता और विद्या गुरुही प्राथमिक शिक्षा देते है

इसमें विद्या गुरुसेभी अधिक माता पिता है जैसे विद्या गुरु विद्या पढ़ाने मात्रसे हितकर है परन्तु माता पिता का इससे भी अधिक पद है क्योंकि विद्याकी योग्यता तो चार वर्षबाद होती है परन्तु माता पिता गर्भमें आनेसेही रक्षक हैं और इस पुद्गलिक शरीरके उत्पादक हैं और माता पिताके रज वीर्य रूप पुद्गल परमाणु जो माता पिताके शरीरके अंश हैं वे उपादान कारण हैं। बालकके शरीरके और अनुपचरितासद्भूतव्यवहारनयकी अपेक्षासे बालकका शरीर बालककी आत्माका है उपचरित असद्भूत व्यवहार नयकी अपेक्षासे माता पितादि बालककी आत्माके हैं इस सम्बन्धसे योग्य अयोग्यका विचार न करके माता पिता बालककी टहल सेवा करते हैं और आगामी हमारी सन्तान ज्ञानादि गुण विशिष्ट हो सुखी रहै उसी उपायको करते विद्या पढ़ाते विनयादि गुण सिखाते हैं और वृद्धावस्थामें माता पिताकी सेवा टहल सन्तान करती है तथा गृहस्थाश्रमका भार लेकर धर्म साधनके लिये छुटकारा देती हुई 'पुंनरकस्तस्मात् त्रायते इति पुत्रः' पुंनाम नरकका हैं उससे जो रक्षा करे उसे पुत्र कहते हैं। समर्थ पुत्र यदि गृहस्थाश्रमका भार न सम्हाले तो माता पिता रात्रिदिन बहुत आरंभ और परिग्रहमें लगेरहते हुये अन्तमें दुर्ध्यानतिसे नरककेपात्र बनते है और अपायात् पातीति पिता जो अनिष्ट पापादिकसे रक्षाकर वे माता पिता हैं इस परस्पर हित अर्थको रखतेहुये माता पिता और पुत्रका परस्परोपकार सम्बन्ध दुर्निवार है सोही श्री उमास्वामी आचार्य तत्वार्थसूत्रमें सूत्रित करते हैं (परस्परोपग्रहो जीवानां)

जीवोंके परस्पर उपकारित्व धर्म्म हैं एक दूसरेका उपकार करते हैं जब माता पिता पुत्र (सन्तान) के उपकारी हैं और इस शरीरके जन्मदाता हैं इससे पूज्य हैं "पूज्यादरोहि महतामिति मंगलत्व" पूज्य पुरुषोंका आदर करनाही

मंगल है अर्थात् जब माता पिताका आदर सन्तान करती है तब सन्तान माता पिताके अनुकूल रहती है और माता पितादिके गुणोंकी छाया बालक पर असर करती है तब जात्यार्य क्षत्रियों-की सन्तान कुल परम्परायसे आर्य ,व आस्तिक व धार्मिक बनी रहती है और उस कुलमें मोक्षपात्रता भी बनी रहती है इसीसे श्रीनेमिचन्द्राचार्य गोत्र का प्रतिपादन करते हुए लिखते हैं कि संताणकमेणागद गोद इति सण्णा इत्यादि अर्थात् सन्तान क्रमसे चला आया जो कुल परंपराय उसीको गोत्र कहते हैं उस कुल परम्परायके प्रतिष्ठित पूर्वपुरुषोंकी स्मृति और अमुक पुरुष अमुक कुल गोत्रका है इस कुलमें ऐसे ऐसे गुणवान् पुरुष हुये चारित्रवान हुये उनकी छाया गुण स्मृतिसे सन्तान पर भी असर करती है विनय नम्रतादि गुण उत्पन्न हों इस कृतज्ञता दर्शनार्थ विचार-से उन आदर्श कुलके प्रतिष्ठित पूर्व पुरुषोंका प्रत्यक्ष व परोक्ष विनय सत्कार रूप आदर व उनकी वैय्यावृत्ति आहारादि दान यह सब करते थे। इसीसे पद्मपुराण संस्कृतमें श्रीआदिनाथ भगवान्को आहार देते समय आहार दानको श्राद्धशब्द करके लिखा है अर्थात् श्रद्धया अन्नं ददाति इति श्राद्धं श्राद्ध शब्दकी प्रवृत्ति आहार दानमें थी और पूज्य पूर्व पुरुषोंका प्रत्यक्ष विनय

था उस परोक्ष विनयरूप उपचार विनय तथा इतिहास रक्षणार्थ परोक्ष कुल परम्पराधका नामोद्देश व स्मरण व उनके नामसे दान करनेकी प्रथा होगी और अब भी तो है उन पूर्वपूज्य पुरुषोंके नामसे स्मृति स्थान यादगारकी जगह तैलचित्र पत्थरकी तदनु-रूप मूर्त्ति इत्यादि बनाई जाती हैं तथा गर्भ जन्मोत्सव वर्षगांठ तपोभूमि निर्वाणस्थान यह सब प्रत्यक्षपरोक्ष विनयके उदाहरण मोजूद हैं और उनको अब भी तो मानते हैं परन्तु पहले समयमें मनुष्य विचारवान् और सरल परिणामी थे और सम्यग्दर्शन गुण करि विभूषित थे जो बात जैसी थी जितनी थी उसको उतनी ही मानते थे कम बढ़ नहीं श्रद्धते थे अब वे ही बातें लोक प्रवाहमें पड़ जाती हैं तो कुछका कुछ रूप हो जाता है कुछ मानने लग जाते हैं साहा इस विषयमें हुआ जिस श्राद्ध शब्दकी प्रवृत्ति प्रत्यक्ष-परोक्ष विनयरूप आहारादिदानमें होगी जो व्यवहारमें कृतज्ञता माननेके लिये होगी उसीको अब परमार्थरूप दे दिया और अन्य अजैन ब्राह्मण लोगोंने अपने पुजाने और खाने तथा धनके लालचमें कथायें गढ़ डालीं कि कुलके पुरिखा जो नरकमें पड़े हैं उनका उद्धार कागला खिलानेसे तथा ब्राह्मणोंको खिलानेसे होता है और ब्राह्मणोंको खिलानेसे पुरिखाओंको पहुंचता है और उन मृतकोंके उद्देशसे एक आश्विन मासका कृष्णपक्ष नियत कर लिया और परोक्षविनयकी यहां तक अति की कि मृतकके उद्देश्य-से आहारादिदान देते समय इतना भक्ति विनय दिखाई कि धोती उनको निचोड़ने रूपभाव निक्षेपका प्रयोग किया और बहोत लो

प्रवाहमें रूपान्तर होते होते वह भी लिखमारा कि वह धोती निचोड़ेका जल भी ग्रहण करो यहां विचारनेकी बात है कि पितर-धोतो निचोड़ा जल महा अपवित्र मलिन उसको क्यों ग्रहण करे और इसमें क्या भक्ति परन्तु इसका मतलब भी यही आपके समक्षमें धोती निचोरने आदि सेवा थी वह अबभी हम परोक्ष रूपको करते है यह उपचार विनयको अति करदी और अर्थका अनर्थकर दुरुपयोग किया फिर इसप्रकार व्यवहारकी किञ्चित कृतज्ञताको लेकर इतना आडम्बर लोकप्रवाहने बढ़ाया॥जो असली परमार्थरूप धर्मिक क्रियायें जिनसे आत्मज्ञानकी वृद्धि होती ऐसे देवपूजा शास्त्र स्वाध्यायदि तत्वबोधके कारण उनको गौण कर छिपादिया और ये आडम्बर बढ़ाकर लोकमूढ़ताका रूप धारण किया इसी सेविवेकी पूर्व जैन विद्वानोंने इस लोकमूढ़ताका निषेध-कर दिया जब जीव मरकर ज्यादेसे ज्यादा ३ तीन समयमें दूसरी पर्यायमें जन्म लेलेताहै और उस जीवकी जब जब पर्याय बदल जाती है तब २ पर्यायज्ञानभी बदल जाता है तब कौनके पिता और कौनके पुत्र और कौनका मोह इनबातोंकी किसको याद रहती है कोई बिरलेको जातिस्मरण होजाता है सोभी किञ्चित कालका सोभी सबको नहीं, फिर यहजीव अपनी करनीसे किसकिस योनि में जाता है ऐसी ऐसी निगोदादि अज्ञ योनियोंमें पैदा होताहै॥जहां अपनी आत्मा का ही बोध नहीं जड चेतन का ही बोध नहीं वहां कौनके लड़के और कौनका पिता और कौनकी सेवा और कौन ग्रहण करे यह सब मनगढ़न्त ब्राह्मणोंकी कथायें जैनसिद्धान्तसे

बिलकुल असंगत हैं इनबातोंको तो आर्यसमाजी लोग ही बजोर कहते हैं कि ब्राह्मणका पेट लैटरबक्स होगया जो इनको जिमायाहुआ श्राद्धका भोजन इनके पितरोंको पहुंच जाता है फिर आज कलका समय और भी खराब है जीते ही माता पिताका कोई आदर नहीं करता फिर मृतकका आदर करना एक लोकरूढि रहगई इसीसे आर्यसमाजी कहते हैं "जियत पिताले दंगमदंगा, मरे पिता पहुंचाये गंगा। जियत पिताकी पुछीन बात मरेपिताको दाल और भात" ये सब बातें उद्देश्यको भूल जानेसे होती हैं अर्थका अनर्थ करनेसे होती है उद्देश्य तो था कृतज्ञता दिखानेका और सन्तान अपने उच्च कुल आर्य सन्तान व्रतियोंकी सन्तान है "हम इस गौरवको बना रखने के लिये जिस जिस गौरवतासे हमारी सन्तान गुणशाली धर्म श्रद्धालु उच्च कर्त्तव्य परायण रहे कुल मर्यादाको रक्खे हमारे वंशमें ऐसे व्रती तपस्वी हुये वह वंशावली हमारे सम्मुख रहे हम उच्चादर्श बनें पूर्वपुरुषोंकी छत्रछायामें बने रहें एतदर्थ उनका आदर करते रहें आजकलकी तरह सन्तान न बने जो पुरिखाओंको कोई कहने- लग जाते हैं ओल्डफूल (पुराने मूर्ख) इस हेतु दान करनेको व्यावहारिकप्रथा होगी परंतु जब अर्थका अनर्थ होने लगा तब लोक मूढ़तामें यह प्रथा परिणत हो गई तब निषेध कर दिया कोई पुरुष पूर्व पुरिखाओंके निमित्तसे दिया हुआ आहार दानका पुण्यफल मृ- तककी आत्माको पहुंचाता है ऐसी आशङ्का करें जैसे मोरूसी जायदाद और धनके उसके कुलके पुत्र पौत्रादि सब ही उस जायदाद वगैरहके उत्तराधिकारी बनते हैं। वे उत्तराधिकारी क्यों माने

जाते हैं हरएक मनुष्य क्यों नहीं उस जायदादका अधिकारी बनाया जाता है। शास्त्रमें उत्तराधिकारी उसके कुटुम्बको ही क्यों बनाया जाता है उस सन्तान और उन पुरिखाओंका उनके शरीरोंमें परस्पर उपादानोपादेय सम्बन्ध था और उनकी आत्माओंके और शरीरोंके साथ अनुपचरित असद्भूतनयसे स्वस्वामि सम्बन्ध है अन्य जीवोंके और शरीरोंके साथ नहीं और उनके धनके और उनके कुटुम्बियोंके साथ उपचरित असद्भूत व्यवहार नयसे स्वस्वामि सम्बन्ध है तब उनके कुटुम्बियोंको ही वह धन जायदाद मिलती है औरोंको नहीं तब उनका संचित धन उनकी गाढ़ी कमाई है और उस धनसे और पुरिखाओंका स्वस्वामि सम्बन्ध उनके समक्षमें था फिर वह मरते समय अन्वयदत्तिमें दे गये। जब सुपात्रमें दिया हुआ दान शुभ फल का देनेवाला होता है और कुपात्र अपात्रमें दिया हुआ दान खोटे फलको फलता है उसी प्रकार अन्वयदत्तिमें दिया हुआ द्रव्य अन्वय कुटुम्बीने दानादि शुभ कार्यमें लगाये हुए शुभ फल प्राप्त कर सदुपयोग किया उसमें दातारका सम्बन्ध है तब तो सत्पात्रमें देनेका विधान है, नहीं तो सुपात्र कुपात्रका कोई विवेक ही नहीं करता शास्त्रोंमें सुपात्रमें ही दानका विधान है तब सुपात्र सदुपयोग करता है उस देयका इससे उस फलसे दातारसे भी सम्बन्ध है प्रत्यक्ष परोक्षमें वह दातर भी फलभागी होता है इसीसे तो लोग कसायी मांसखोरोंको दानमें पैसा नहीं देते कि इससे अनिष्ट फल होगा।

जिस संतानको वह पुत्रिका उत्तराधिकारी बना गया है उस उत्तराधिकारीने जो दानादि किया उसमें परम्परा सम्बंध उस पुत्रिकाका भी है यद्यपि मुख्यतया निजपरिणामोंसे ही निज आत्मा द्वारा किये हुये कार्योंका ही फल प्राणी भोक्ता है परंतु कहीं कहीं निज परिणामसे नहीं करने पर भी संसर्गासंसर्ग भावसे भी फल भोगना होता है ऐसा भी देखनेमें आता है। जैसे एक राजाके यहां एक मनुष्य खजाञ्ची रहता है और वह राजाके खजानेमेंसे माल बरामद करके लाया करैं और सारा कुटुम्ब उस धनसे पलता है उस कुटुम्बमें छोटे छोटे बच्चे आदि भी होते हैं उन्हें तो कुछ परिज्ञान नहीं होता परन्तु राजाको मालूम हो जाय तो सबको देश निकालेका दण्ड दे देता हैं तो सबको ही भोगना पड़ता है उस द्रव्यके सेवनसे सबको ही भोगना होता है। कहीं कहीं दूसरेका शुभ परिणाम आशीर्वादात्मक दूसरेको भी शुभ फल देता है जैसे षोडश कारण भावना भाते समय जब मनुष्यके ऐसे भाव होते हैं कि तीनों लोकके ये जीव दुःखी है इनका कैसे उद्धार हो ऐसा तीनों लोकसुखीकरण रूप परिणाम होते ही तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध होता है तब तीर्थङ्कर प्रकृतिके उदय और केवल ज्ञान प्राप्ति समय व जन्म समय तीन लोकोंके जीवोंको साता उत्पन्न होती है इत्यादि संसारमें जटाजूट परम्परा सम्बन्धसे परस्पर एक दूसरेको निमित्त नैमित्तक सम्बन्धसे शुभाशुभ फल होत देखिये हैं तथा किसी स्त्रीपुरुषको पूर्व जन्ममें सर्पने काटा हो तो दूसरे जन्ममें विषबेलि शरीरमें

निकलती है तब वे लोग ढाक बजवाते है जैसे सर्प काटेमें बजवाते है वे लोग मन्त्र जानते हैं उस मंत्रसे आ कर सर्प उस स्त्रीपुरुषके ऊपर खेलता है अर्थात् वह स्त्रीपुरुष आवेशमें आ कर दूसरे भवका हाल कहते और फिर वह विषवेलि अच्छी होती है अर्थात् चली जाती है ऐसा सुनते हैं दूसरे भवके काटेके विषका सम्बन्ध इस शरीरमें आता है और उन विषरूप परमाणुओंके सम्बन्धसे उस-सर्पकी आत्माका आगमन होता है वचन रूप मंत्र द्वारा, तो फिर त्रिवर्णाचारमें वचन द्वारा पितर असुरोंका बुलाना तो असंगत नहीं हुआ थोड़ी देरके लिये मान भी लेवें हम कि ऐसे अटाजूट परम्परा सम्बन्धसे प्राणियोंके शुभाशुभ फल होता है नहीं तो आचार्य ऐसा क्यों लिखते —

खम्मामि सव्व जीवाणं सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मित्ती मे सव्वभूदेसु वेरं मज्झ ण केण वि ॥१॥

यह गाथा सर्व प्रसिद्ध है। क्षमावणीके पत्रोंमे हर जगह लिखा जाता है। इसका अर्थ यह है कि संसारके एकेन्द्रियसे लेकर पञ्चेन्द्रिय पर्य्यन्त अनन्तानन्त जीवोंके प्रति मेरे क्षमा भाव हैं और वे सब जीव मेरे ऊपर क्षमा करैं सर्व प्राणी मात्रसे मेरे मित्रता है आत्मत्व जातिके नाते मेरे किसीसे वैर नहीं है क्रोध भाव किसी के प्रति नहीं है यहां पर विचारनेकी बात है कि श्री आचार्य मुनि साधुसे ले कर अविरत सम्यग्दृष्टि पर्यन्त हेयोपादेयका विचार है सो हम लोग सैनी पञ्चेन्द्रिय पर्यन्त दूसरेके प्रति क्षमा धारण कर सके है परन्तु जो असैनी पञ्चेन्द्रियसे सूक्ष्म लब्ध्यपर्याप्त पर्याय

ज्ञानवाले अक्षरके अनन्तवें भाग ज्ञान रखनेवाले पर्यन्त अज्ञ जीवों-से क्षमा प्रार्थना क्योंकि उन्हें यही खबर नहीं कि हमारी विराधना की है दुखादिया है अब ये अपराध स्वीकृत करते हैं इनके ऊपर क्षमा कर दो परिणामोंको कोमल करो। जब यह पात्रता ही नहीं है तो अपराध क्षमा किससे कराया जाता है क्या आज कलके विज्ञ लोगोंकी दृष्टिमें क्या यह भी ढकोसला है! नहीं, नहीं, इसमें भी कुछ रहस्य है एक तो उन अज्ञ जीवोंके प्रति भी कोमल भाव हैं आगामी उनकी हिंसा कम होगी दूसरे उनको हीन समझ अनादर भाव नहीं है, तत्त्वोंकी सुदृष्टिसे अनंत शक्तिका धारक उनके अन्दर भी वही आत्मा है यह सम्यग्दृष्टि हैं। तीसरे जीवोंमें परस्पर आकृष्य आकर्षण शक्ति भी है कि तुम हमें कितने चाहते हो उतना ही हम तुम्हें चाहते हैं तुम्हारा परिणाम मेरे प्रति कलुषित नहीं है तो मेरा परिणाम भी तुम्हारे प्रति कलुषित नहीं होता यही तो कारण है कि वनमें शान्तमुद्रा गुरुओंको देख सिंह भी आकर शान्त दशा धारि मस्तक नवाते हैं तथा केवली भगवान्‌के चारों तरफ सौ सौ योजन अदयाका अभाव सिंहिनी हिरनीके बच्चेको दूध पिलाती और हिरनी सिंहिनीके बच्चेको, आति बैर ही दूर हो जाता और तो क्या सौ सौ योजन सुभिक्षता वनस्पति जीवोंके भी दुःख चले जाते और षट् ऋतुके फल फूल एक ही समयमें फूलते फलते तो उनकी आत्माओंको भी प्रमोद और आनन्द होता है फूलना फलना यही एकन्द्रिय जीवोंको योस और खुशीहै जिसको कवि लोग उत्प्रेक्षालङ्कार कामय

करते हैं, मानो वृक्ष हंस रहे हैं जैसे तुमको जब भीतरसे खुशी होती है तब मुखको विकसित कर हंसते हो वसी प्रकार वृक्षादि वनस्पति जीव भी पानी हवा प्रकृति अनुकूल हवा पानी मिलनेसे अन्तरंग सुख गुणको आल्हादनपनेको प्रफुल्लित हो प्रगट करते हैं, उनके अन्दर भी तो ज्ञान सुखादि गुण हैं, वे भी तो जीव हैं, उनका वेऋतुमें आकस्मिक खुशी होना भी उसी परमकारुणिक परम दयालु सब पर क्षमा मांगनेवाले और सब पर क्षमा करनेवाले निर्ग्रन्थ गुरु और अर्हंत सकलपरमात्माकी निकटताका ही तो प्रभाव है! इस प्रकार निमित्त नैमित्तिक सम्बन्धसे प्राणियोंको शुभाशुभ फल होता है तो भी मोक्षमार्गमें ऐसे अटाजुट सम्बन्धसे भई जो शुभाशुभ फलकी प्राप्ति उसकी अपेक्षा नहीं वहां शुभ शुद्ध निजपरिणामोंकी ही अपेक्षा है ऐसा न होता तो इस संसारसे छुटकारा ही नहीं हो सक्ता अपने किये हुये तीव्र पुण्य पाप कर्मके उदयमें दूसरेके दिये हुये आशीर्वाद और शाप भी असर नहीं करते इसलिये मृत आत्माके हित निमित्त शुभ कामना दानादिक हितकर हों न हों यह कोई नियम नहीं केवल कृतज्ञता मात्र हैं, दूसरे मृत आत्माके उद्देश्यसे दिया हुआ अन्न कदन्न है क्योंकि वह आहार ग्रहण करनेवालेको ज्ञानावरणकर्मके आस्रवका कारण है क्योंकि वह प्रायश्चित्तो अन्न है, विशुद्ध परिणामी विशुद्ध वृत्ति रखनेवाले जीव तेरही तेरही आदिका भोजन ग्रहण नहीं करते उसके खानेसे बुद्धि पर मलिनता आती है कारण वह दान मोह परिणामसे किया जाता है विशुद्ध

भपरिणामसे नहीं। जैसे कोई पुरुष बीमार हो तो लोग दान पुण्य करते हैं कि अनिष्ट कटे है और दातार भी आर्त परिणामसे देता है दुःखनिवृत्तिरूप निदान परिणामसे देता है निर्दोषवृत्तिसे नहीं। जैसे नवग्रह सूचित दोष निवृत्यर्थ धान्यादिक दान भड्डरी डाकोत आदिको किया जाता है वह अपनी आपत्तिको दूसरेके सिर पटकनेके लिये अर्थात् यह दान नहीं तन्त्र है। इसमें भी यही बात है कि अन्य मतावलंबी श्रेष्ठ ब्राह्मण भी ऐसे दान नहीं लेते कारण वे भी इन दानोंको अनिष्ट समझते हैं जैसे क्षय रोग पर अन्यमतमें कुंभ दान कराते हैं परन्तु सद् ब्राह्मण कुंभदान नहीं लेते उन्हें भय रहता है कि कहीं क्षयरोग हमको न हो जावे त जैसे आहार औषधि शास्त्र अभय ये निर्दोष दान है और मोक्ष-मार्गमें परम्पराय साक्षात् मोक्षके कारण हैं वैसे ये ग्रहादिकके दान नहीं किन्तु ये ग्रहचाराम अपनी आपत्ति दूर करनेके लिये मणि मन्त्र तन्त्र औषधि उपाय हैं। जिनका प्रवल आत्मा है वे मणिमन्त्र तन्त्र औषधि किसीका भी अवलम्बन नहीं करते उसी प्रकार मुहूर्त्त गृह निर्माणादिमें शिल्प शास्त्रोक्त सर्पके स्थानादि छोड़ शिला स्थापन नीव लगाने आदि वास्तु विधान आदिमें ८१ पद तदवच्छिन्न कुत्सित परमाणुओंके निवृत्यर्थ व परिवर्तनार्थ बीजाक्षर समन्वित मन्त्र व देवाह्वानन सत्कारादि गृह प्रतिष्ठादि क्रियायें ये सब व्यवहारमें उपयोगी हैं। कमजोर आत्मा सब उपायोंका व्यवहारमें अवलम्बन करता है जिसमें सम्यक्त्वमें और व्रतमें दोष न लगे वह सब क्रियायें करता है। अब कृतज्ञता

प्रदर्शनार्थ विशिष्ट मृत आत्माके निमित्तसे आहार दान किया जाता था और उसका उद्देश्य इतना ही माना जाता था कि इस पौद्गलिक शरीरके सम्बन्धसे माता पितादि गुरुजन उपकारी और व्यवहारमें पूज्य माने जाते थे और यह व्यावहारिक क्रिया होती तब तो कोई सम्यक्त्व हानि नहीं और अब उसका उद्देश्य परिवर्तन हो कर लोकप्रवाहने मोक्षमार्गकी क्रिया समझ ली तब सम्यक्त्व और व्रतमें हानिकारक क्रिया हो गई तब निषेध कर दिया गया त्रिवर्णाचारादि ग्रंथोंमें जो श्राद्धादि विषय लिखा है वह भी व्यवहार दृष्टिसे समझना चाहिये इतना अवश्य समझ लेना चाहिये कि जो ऋषि प्रणीत आर्ष ग्रंथ होते हैं उनमें तो जो विषय होता है वह दूरदर्शितासे आगा-पीछा विचार कर लिखा हुआ होता है वहां वे समझ लेते हैं, कि यह विषय लिखते हैं आगामी मनुष्य हीनबुद्धि होंगे या तो उसे खुलासा कर देते हैं या ऐसे विषयोंको ही नहीं लिखते जो अंधेको गोते और दो मनुष्य आवें या जिसमें अल्प फल और बहुत प्रयास हो और जो अनार्ष ग्रन्थ हैं जो भट्टारक व गृहस्थ विद्वानोंके बनाये व संगृहीत ग्रन्थ हैं उनमें वह दूरदर्शिता नहीं पाई जाती जो ऋषि प्रणीतोंमें होती है ऐसे ग्रन्थोंमें ऐसे भी विषय मिल जाते हैं जैसे किसीके पास छोटा गमछा हो और वह पांछे तो एक तरफ नितम्ब (चूतर) ढकें और एक तरफ खुले रह जावें वह लेखन शैलीका दोष रहता है इससे यह नहीं समझ लेना चाहिये कि वे ग्रंथ एकदम अप्रमाण हैं। वे ग्रन्थ ऋषिप्रणीत आर्षग्रन्थोंके

सामने प्रमाण कोटिमें नहीं आते तो भी तबतक वे अप्रमाण नहीं माने जा सकते जबतक ग्रन्थलेखकका उद्देश्य आर्ष ग्रन्थोंसे विरुद्ध न पाया जावे और उद्देश्य विरुद्ध तबतक नहीं समझा जा सकता जबतक जिन विषयोंको हमने असंगत और अस्तव्यस्त समझा है उन विषयोंका उसी रूपसे आर्षग्रन्थोंमें खण्डन न मिले तबतक वे विषय अप्रमाण नहीं ठहर सकते यदि किसी दूसरे अभिप्राय से खण्डन किये हुये विषयको किसी दूसरे अभिप्रायसे मण्डन किये हुये विषयका खण्डन मान लेंगे तो शास्त्रमें अभेद विवक्षा से कहे हुये विषयका भेद विवक्षासे खण्डन हो जायगा। और भेद विवक्षासे कहे हुये पदार्थका अभेद विवक्षासे खण्डन हो जायगा तब परस्पर ही सब वाक्योंमें विरोध हो जायगा तब अनेकान्त सिद्धान्त और जैन सिद्धान्तका रहस्य ही नहीं रहेगा तथा कोई वस्तु ही नहीं ठहर सकती और मान लो कि कोई विषय अन समझसे अस्तव्यस्त लिखा गया हो तो भी वह विषय अप्रमाण नहीं हो सकता। कहनेवालेसे सुननेवालेको सावधान रहना चाहिये कि समझके ग्रहण करें परन्तु जो विषय जिस रूपसे लिखा है वह विषय उसी रूपसे आर्षग्रन्थसे खण्डित हैं तो वह विषय वह ग्रन्थ और वह विद्वान् प्रमाणित नहीं।

त्रिवर्णाचारमें जो विषय हैं वे प्राय: तीन वर्णोंका आचार और लोक व्यवहार वर्णित हैं उसमे राजनीतिका भी वर्णन है। गर्भा-धानसे ले कर शरीरके अवसान-मरण पर्यन्तका वर्णन है। मोक्षके साधक धर्म अर्थ काम इन तीन व्यवहार पुरुषार्थोंका वर्णन है

मुख्यतया मोक्षका कथन नहीं बल्कि व्यवहार चारित्रका वर्णन है। यद्यपि व्यवहार चारित्र निश्चय चारित्रका कारण है तथापि जो व्यवहार दृष्टिको ले कर ही लिखा गया है उसमें निश्चयनयका ध्येय गौण हैं इसी हेतु व्यवहार उपकृतिको ले कर श्राद्धादि विषय लिखे गये हैं। यद्यपि श्राद्धादिकका अन्न कदन्न हैं विशुद्ध परिणामी निर्मलज्ञानी व्रती आत्माके ज्ञानके ऊपर पर्दा डालनेवाला है तथापि संसारी दुखी क्षुधादिसे आर्त आत्माको सन्तोष देनेवाला वह कदन्न भी उपादेय हितकर होता है। इसी अल्पफलको व्यवहारमें मानकर लिखा होगा और दूसरे विद्वानोंने परमार्थ दृष्टिसे अल्प फल बहुत प्रयास समझ कर तथा मोक्षमार्गमें इसको तुच्छ समझ नहीं लिखा है परन्तु जैसा तुम बुरी तरहसे खण्डन करते हो वैसा यह निर्मूल अलीक पदार्थ तो नहीं समझमें आता तो भी वर्तमान समयमें लोक प्रवाहमें मिथ्यात्ववर्द्धक यह प्रथा हो गई है इसलिये विधानमें नहीं लाई जासकती और एकदम अलीक बतानेसे पदार्थका अभाव ठहरता है इसलिये जो बात है वह समझ लेना चाहिये।

कुछका कुछ समझ लेना कुछका कुछ करना ही मिथ्यात्व है और मिथ्याचारित्र है। कोई यह कहे कि अब इस समय उद्देश्य ठीक कर हम फिर श्राद्धादिकका प्रचार करें तब तो अच्छा होगा सो भी ठीक नहीं। वह लोक प्रवाहमें आनेसे फिर वही मिथ्यात्व वर्द्धक क्रिया हो जायगी व इस समयके जीव वक्रपरिणामी और अज्ञानी अधिकांश है इसलिये श्राद्धादिक मिथ्यात्व ही बढ़ानेवाले

है इस अभिप्रायसे श्राद्धको अलीक बतानेमें भी अत्युक्ति नहीं है और भी त्रिवर्णाचारमें बड़पीपलादिका कथन आर्षग्रन्थोंसे विरुद्ध है तथापि वह विषय ऐसे हैं कि वर्तमानमें उपयोगी हैं और उन बिना बनता नहीं। जैसे गर्भाधानादि संस्कार आदि अनेक उपयोगी विषय हैं यदि इसको अप्रमाण करते हो तो संस्कार किस आधारसे करावें इसलिये आपादतः यह कहना चाहिये कि जब तक जिन विषयोंका विधान व खण्डन ऋषि प्रणीत ग्रन्थोंमें न मिले तबतक तटस्थ अर्थात् मध्यस्थ रह कर तबतक प्रमाणमें लेने चाहिये जबतक दूसरे ग्रन्थोंमें विधि निषेध न मिले, इस समयमें जो इन गर्भाधान विवाहादि क्रियाओंके ग्रन्थ जो उपलब्ध हैं (मिल रहे हैं) वे सब प्रायः ऋषि प्रणीत नहीं माने जाते किन्तु जो गद्दी नशीन भट्टारक व गृहस्थ पंडितों द्वारा निर्मित बताये जाते हैं सम्भव है सर्वज्ञप्रणीत आगमके वाक्योंसे गलतीसे या रागांशसे कोई पदार्थको अन्यथा भी प्रतिपादन कर गये हों तो अन्य ग्रन्थोंसे पता लगजाता है कि यह पदार्थ संगत नहीं है, परंतु जो विषय आर्ष ग्रन्थोंमे नाम निर्देश मात्र है जैसे गर्भाधान व विवाहादि संस्कार जैसे आदि पुराणमे व तत्त्वार्थसूत्र सर्वार्थसिद्धि राजवार्तिक आदिमें "परविवाहकरणेत्वरिका परिगृहीता-परिगृहीतादि" सूत्रमें विवाह निर्देश तथा राजवार्तिकमें 'कन्यावरणं विवाहः' तथा आदिपुराणमे गर्भाधानादि संस्कारोंका वर्णन व मन्त्रोंका कथन है परन्तु इन ग्रन्थोंमें विशेष विधि नहीं है जैसे—

येषां प्रणीतमग्नीनां त्रयं द्वयमथैककम्
ततः प्रदक्षिणीकृत्य प्रसज्य विनिवेशनम् ॥१२०॥

पाणिग्रहणदीक्षायां नियुक्तं तद्वधूवरं
आसप्ताहं चरेद् ब्रह्म व्रतदेवाग्निसाक्षिकं ॥१२१॥
विमुक्त कंकणं पश्चात् इत्यादि—

विवाहवेदी पर सर्वज्ञ प्रणीत तीर्थंकर गणधर सामान्य केवलीकी निर्वाणकी गार्हपत्याग्नि दक्षिणाग्नि आहवनीयाग्नि इन तीन अग्नियोंकी प्रदक्षिणा दे कर पाणिग्रहण करै, स्वदारसंतोषव्रत गृहस्थ ब्रह्मचर्य धारण करै विवाहबाद श्री तीर्थ जिनमन्दिरादिके दर्शन पूजन कर गृहप्रवेश विभूति सहित करै फिर कङ्कण छोड़े ऐसा संक्षिप्त कथन है। विवाह किस प्रकार करै और क्या २ प्रारंभसे करै और पूर्ण तक क्या क्या करै यह सब विषय त्रिवर्णाचारादि संहिताओंमे मिलता है जैसे विवाहके आठ भेद व विवाहके पांच अंग वाग्दानं १ प्रदानञ्च २ वरणं ३ पाणिपीडनं ४ सप्तपदीति ५ वाग्दान-सगाई १ प्रदान--लड़का लड़कीको दोनों तरफसे वस्त्र भूषणादि प्रदान २, वरणं--शाखोच्चारादिसे स्वीकार करनेकी प्रतिज्ञा, ३, पाणिपीडन-लड़कीके हाथ पीले कर लड़केको सोंपना, ४--सप्तपदी-सातभांवर डालना, ५ तथा इसके सिवाय अंकुरारोपण तेल चढ़ावना कंकण बांधना आदि अनेक रिटिमा आर्षग्रन्थोंमें मिलते नहीं तो क्या कन्यावरणं विवाहः इसका अर्थ आर्षविधि विहित विधिविधानसे कन्याका स्वीकार करना पूर्वोक्त विवाह है ऐसा नहीं मानना चाहिये और वे क्रियायें क्या नहीं करनी चाहिये ?

यदि इन त्रिवर्णाचारादि संहिताओंका परित्याग कर आर्ष-

ग्रन्थोंके अंशको ही पर्याप्त विधि समझ लेवें तो फिर अंग्रेजों-की तरह हाथमें हाथ मिला कर गुडमोर्निंग करके ही विवाह कर लेना चाहिये क्योंकि हाथमें हाथ मिलानेसे कन्याकी स्वीकारता हो गई फिर इतना टंटा व्यर्थ है, परन्तु यह टंटा व्यर्थ नहीं मालूम होता। कारण आगम प्रमाण तो इस प्रकार है कि आदिपुराण हरिवंशपुराण पद्मपुराणादिमें जहां स्वयंवर हुआ वहाँ पर स्वयंवरके बाद फिर उन राजकुमार राजकुमारियोंका माता पिताने विवाह लग्न विधिविधानसे लग्न पाणिग्रहण कराये लिखा है दूसरे जो आर्ष विधिसे विवाह कराया जाता है उसमें कन्या और वरको प्रतिज्ञित कर स्वदारसन्तोष व्रत दिलाया जाता है इससे बालक बालिका सदाचारी बनते तीसरे चारित्रशील रह कर धार्मिक सन्तान उत्पन्न करते जन्म भर सुख पाते धर्मबुद्धि रहती कुल वृद्धि होती वंश चलता चौथे विवाहमें सामिल जनता वर कन्याको आशीर्वाद देती और पांचवे इस प्रकार देखादेखी व्यवहार धर्मका मार्ग चारित्र शीलता का प्रचार होता छट्ठे वे आजन्म एक दूसरेको छोड़ नहीं सकते सातवें उनकी सन्तान ही उनके दायभागकी अधिकारिणी बनती ये सब बातें हैं, ये बातें आर्ष-विवाहसे रहती हैं और यथा तथा जिस तरह बना उस प्रकार घरमें ही चाललो उसमें उपर्युक्त बातें नहीं पाई जातीं इससे यह विवाह विधि आर्षोक्त प्रतीत होती है सर्वज्ञ आगमसे चली आई है ऐसा अनुमान प्रमाणसे भी प्रतीत होता है, इस विषयके आर्षग्रन्थ इस समय उपलब्ध नहीं क्योंकि अनेक आर्ष दि० जैन

ग्रन्थ शंकराचार्य सन्यासीने हजारों लाखोंकी संख्यामें समुद्रमें डुबोदिये और हजारों ही ग्रन्थ अकबर बादशाहने आगमें जलाजला कर महीनों गर्म पानीकर कर स्नान किया उसमें चले गये। आर्षग्रन्थोंमें एक आदिपुराण ही इस विषयमें उपलब्ध है जिसमें गर्भाधानसे ले कर श्रावककी त्रेपन क्रियाओंका वर्णन है ऐसे विवाह विधिमें पर्व ३८में लिखा है—

पुण्याश्रमे क्वचित् सिद्धप्रतिमाभिमुखं तयोः

दम्पत्योः परया भूत्या कार्यः पाणिग्रहोत्सवः ॥श्लो० सं १२८

क्वचित् पुण्याश्रम कहीं पुण्य सञ्चय करनेका आश्रम स्थान जो गृहस्थाश्रम है उसमें अर्थात् गृहस्थाश्रममें शुभोपयोग ही बन सकता है शुद्धोपयोग नहीं, इससे पुण्य सञ्चय शुभोपयोगसेही होता है। ऐसे गृहस्थाश्रम मे श्रीसिद्ध प्रतिमाजीके सम्मुख उन स्त्री पुरुषोंका परम विभूतिके साथ पाणिग्रहणका उत्सव करना या कराना चाहिये। इस श्लोकमें श्री सिद्धप्रतिमाजीके सम्मुख विवाह लग्न कराना चाहिये ऐसा संक्षिप्त निर्देश है परन्तु इसमें क्या क्या विधि हैं और कौन २ वस्तुओंका उपयोग करना, इसप्रकार विशेष विधि नहीं। हवनकाभी विवाहमें कथन है जिसके लिये पीठिका मन्त्रोंका भी वर्णन है और सप्त परमस्थानकाभी वर्णन हैं परन्तु योजना किस प्रकार करनी इसके लिये तो तेरापन्थियों को व बीसपन्थियों को और सुधारक दलको व पंडित दलको सबकोही त्रिवर्णाचारोंका आश्रय लेनापड़ता है, जब अजैन विद्वानोंके सामने प्रमाण उपस्थित करने होंगे तब त्रिवर्णाचारोंकी ही साक्षी देनी

होगी। वह त्रिवर्णाचार सबकी दृष्टिमें अमान्य है पर विवाहादि संस्कार विषयमें उसकी प्रमाणता लेनीही होती है और यदि नहीं लेते हैं तो हम उन भाइयोंसे ऐसे आर्ष ग्रन्थकी उपस्थिति चाहते हैं कि वे हमें कृपाकर दर्शन करावें कि जिसमें यज्ञोपवीत मुण्डन सीमन्त विवाह आदि संस्कार इस विधि विधान से करें ऐसे कौनसे आर्ष ग्रन्थमें हैं। हमारे जैनसमाजमें वर्तमानमें वृद्ध पंडित लक्ष्मीचन्द्जी यज्ञोपवीतही को नहीं मानते ऐसा सुनते हैं और विवाहादि संस्कार मानते हैं तो हम उन पूज्य पं० जीसे सानुनय प्रार्थना करते हैं उन्होंने अपनी उमरमें हजारों शास्त्र जैन अजैन के देखे हैं वे भी ऐसा आर्ष प्रणीत शास्त्रका दिग्दर्शन करावें कि जिसमें अमुक संस्कार मान्य है अमुक संस्कार मान्य नहीं तथा श्रीमान् वयोवृद्ध विद्वद्वर सेठि हीराचन्द्जी सोलापुर से भी सानुनय प्रार्थना करते हैं कि संस्कारों की विधि विधान जिस आर्ष ग्रन्थमें हो उसको दिखाकर शुद्ध मार्गका प्रदर्शन करें परन्तु कोरी युक्तियां लड़ाकर केवल ग्रन्थके खण्डन करनेसे कार्य नहीं होता। शास्त्रका उत्तर शास्त्रसे होना चाहिये कि आर्ष शास्त्रमें तो इस प्रकार विधि है और अनार्ष ग्रन्थमें इसप्रकार है। इसलिये आर्ष ग्रन्थसे यह खण्डित है। अब आर्षग्रन्थमें तो उपलब्ध नहीं और अनार्ष वाक्य हमें मान्य नहीं तब किधर जांय किसके आश्रय रहें। सबसे ज्यादा आक्षेप त्रिवर्णाचारमें गर्भाधानपर है जिसको हंसीसे योनिपूजा योनिपूजा कहकर हल्लामचाया है यहाँपर विचारनेका स्थल है कि हंसीकरोतो वही हंसीका स्थल है और वस्तु

विवेचनकी तरफ दृष्टी दो तो पदार्थ विवेचन है, अभिप्रायवश पदार्थ पलट जाता है जैसे बसा हृदयस्थलसे वहिन भानजी भेंटते हैं और उसीसे स्त्रीका आलिंगन करते हैं तो अभिप्रायकाही तो भेद है इसीप्रकार स्त्रियों की द्रव्य योनियोंको आगममें उत्पत्ति स्थान वर्णन किया है। जैसे खेतमें बीज अनाज बोते हैं तो खेततो योनि स्थल है और बीज उत्पादक है, बीज आधेय है और योनि आधार है। जैसे खेतको खितहार किसान जोतता है कृषता हैं कूड़ा-करकट दूर करता हैं खात डालता है तब बीज बोता है तो धान्य उत्तम और पुष्कल (बहुत) पैदा होता है और यदि वह किसान खेतको जोत कृषकर साफ न करेंतो उसमें बोयाहुआ अनाज उपजे नहीं और उपजे तो सुन्दर पुष्ट न हो व फल देने वाले गाछ वृक्ष न हों इस लिये खेतमें बीजबोनेके पहले उसको निर्दोष बनानेकी आवश्यक्ता है उसी प्रकार उत्तम कुलके श्रेष्ठ पुरुषों को श्रेष्ठ स्वभाव वाली धर्म तीर्थको चलानेवाली तथा धर्म तीर्थसे तिरने वाली श्रेष्ठ सन्तानको उत्पन्न करनेके इच्छुक पुरुषोंके लिये माताका रज और वीर्यको गर्भाधानके पहले शुद्ध करनेकी आवश्यकता है। पहलेतो पिताको सच्चरित्र शील शुद्धवृत्तिसे रहकर वीर्य की रक्षा करनी चाहिये क्योंकि किसी कविने कहा है कि "स्ववीर्य-गुप्ता हि मनोः प्रसूतयः" कुलकरोंकी सन्तान अपने वीर्यसे ही रक्षित रहती हैं अर्थात् जिनका वीर्य सुरक्षित रहा है वही अपने पैरों खड़े रहते हैं वे कभी दूसरेकी आशा नहीं करते। पुष्ट वीर्यवालेकी सन्तान सदा बलवती होती है दूसरें माताकी योनिमें

वात पित्त कफादि द्वारा कोई रोग नहीं रहना चाहिये इसी हेतु आयुर्वेद वैद्यक शास्त्र में लिखते हैं—

विंशतिर्व्यापदो योनौ निर्दिष्टा रोगसंग्रहे
मिथ्याचारेण ताः स्त्रीणां प्रदुष्टेनार्तवेन च
जायन्ते वीजदोषाच्च दैवाच्च शृणु ताः पृथक्

मनुष्यमात्र की उत्पत्ति स्थान स्त्रीकी योनि है उसमें २० रोग रोगसंग्रहमें संक्षिप्तपने वर्णन किये हैं वे मिथ्या आचारसे अर्थात् मिथ्या आहार विहारसे तथा मिथ्या चारित्रसे कोई रोग दुष्ट आर्तव रजोधर्म दुष्ट खराब होनेसे तथा माता पिताके वीर्य रजके दोषसे और पूर्वोपार्जित कर्मके उदयसे ये रोग होते हैं जो सन्तानके बाधक होते हैं और भी लिखा है कि स्त्रीकी योनिमें वायुगांठि होनेसे पुष्पके ऊपर मांस चढ़ जानेसे तथा योनिमें कृमि होनेसे तथा पुष्प शीतल होनेसे और वन्ध्या दोष होनेसे स्त्रीके सन्तान नहीं होती उन रोगोंके प्रतीकारार्थ अनेक औषधियाँ लिखी हैं जैसे—

योनिव्यापत्ति हृद्रोग गुल्मार्शोविनिवृत्तये
गुडूचीत्रिफलादन्ती कषायैः सेचनं हितम्
योन्यान्तु पूयस्राविण्यां शोधनद्रव्यनिर्मितैः
सगोमूत्रै सलवणैःपिण्डैःसम्पूरणं हितम्

योनिके दोष तथा हृदय रोग गुल्म अर्शादि निवृत्ति दूर करनेके

लिये गिलोय त्रिफला गोदन्तीके क्वाथसे सेचन हित है और पूयस्रावी योनिके शुध्यर्थ गोमूत्र और शोधन द्रव्योंसे शोधन करना हित है, इसी अभिप्रायसे मेरे समझमें गोमूत्र दूध दही और केशर गंधादिसे योनिस्थ व्रण या कुत्सित परमाणु दूर करने निमित्त मन्त्रपूर्वक शोधन संस्कारसे संस्कारित कर गर्भाधाननिमित्त बीजारोपण करना लिखा है। यद्यपि श्री आदिपुराणजीके ३८ वे पर्वमें श्रीजिनसेनस्वामीने जो गर्भाधान क्रियायें वर्णन की हैं तथा जो पीठिकामन्त्रोंसे आहुति देना स्त्रीपुरुषों को करना और सप्त परमस्थानसूचक ७ मन्त्र लिखे हैं और त्रिवर्णाचारमें जो गर्भाधानमें मन्त्र पञ्चपरमेष्ठि वाचक लिखे हैं इन दोनोंमें भेद है और १०८ पीठिका मन्त्रोंसे हवन करना दोनोंमें समान हैं। श्रीजिनसेन स्वामीके समक्षमें त्रिवर्णाचारके वाक्य प्रमाण नहीं माने जासक्ते और श्रीजिनसेन स्वामी लिखते भी हैं कि—

क्रियागर्भादिका यास्ता निर्वाणान्ता पुरोदिताः।
आधानादिस्मशानान्ता न ताःसम्यक् क्रिया मताः ॥२५॥
मन्त्रास्त एव धर्म्याः स्यु र्ये क्रियासु नियोजिताः।
दुर्मन्त्रास्तेत्र विज्ञेया ये युक्ता प्राणिमारणे ॥२६॥

जो हमने गर्भाधानादि निर्वाण पर्यन्त आगमोक्त ५३ क्रियाये पहले ऊपर वर्णनकी हैं वे ही क्रियायें लेनी और जो अन्य लोगोंने आधानसे लेकर स्मशान पर्यन्त वर्णन की हैं, वे न लेनी वे ठीक

नहीं है और मन्त्र भी वेही लेने जो क्रियाओंमें वर्णन किये हैं। वे मन्त्र नहीं लेने जो प्राणियोंके मारणमें नियुक्त हैं वे दुष्ट हैं। यहांपर श्रीआचार्य प्रवर श्रीजिनसेनस्वामीका क्या अभिप्राय है मेरी समझ में नहीं आया कि अजैन अन्य लोगोंके आगममें जो गर्भाधानादि श्मशान तक क्रियायें वर्णन की हैं वे न लेनी या जो कोई जिन-शास्त्रमें भी आधानसे श्मशानतक लिखी हों वे भी न लेनी, कारण श्री आदिपुराणमें गर्भाधानसे निर्वाण तक जो त्रेपन क्रियायें वर्णन की हैं उनमें श्मशानमें क्या करै इसका कुछ वर्णन नहीं और न किसी आर्ष ग्रन्थमें देखनेमें आई परन्तु श्रीतीर्थङ्कर देवके मोक्ष चले जाने बाद जो शरीर रह जाता है उसमें दो मत हैं एक आचार्य तो कहते हैं कि श्रीतीर्थङ्करके शरीरको इन्द्रादि देव आकर पालकीमें बैठा कर श्रीनिर्वाणकल्याणककी पूजा कर उसी निर्वाणस्थान पर अगर कपूर चन्दनादिसे सज्जित शरीरको अग्निकुमार देवोंके मुकुट समुद्भूत अग्निसे भस्म किया और एक आचार्य कहते हैं कि शरीरके परमाणु दामिनवत् सब उड़ गये, नख केश बाकी रहे उनका फिर देवोंने शरीर रचा और अग्निकुमार देवोंकी अग्नि द्वारा भस्म किया और भस्मी अंगमें लगाई। एक लिखते हैं कि उस भस्मीको इन्द्रने ले जा कर क्षीर-सागरमें क्षेपण किया उसी प्रथाको लेकर आज सारा संसार मुर्देको जलाते हैं और अगर चन्दन घी आदि सुगन्धित द्रव्य भी चितामें डालते हैं और अन्य लोग फूल ले जाकर गंगामें क्षेपते हैं। श्री आदिपुराणके कर्ता श्री जिनसेन स्वामीने भस्मी

देवोंने शरीरमें लगाई लिखा है। क्षीरसागरमें क्षेपण नहीं लिखा इसीसे जैन लोग फूल नहीं ले आते इस दिग्दर्शनसे स्मशानमें मृतकके संस्कारका निर्देश तो श्री जिनसेनस्वामीने स्वयं ही किया परन्तु जो निषेध किया है वह निषेध जो अजैन लोग मृतकके साथ पिण्ड आदि रखते हैं इत्यादि आडम्बर बीचकी गोलमाल जो मनगढ़न्त अन्य लोगोंने चलादी उसका निषेध किया। निर्वाण का अर्थ भी मुक्त आत्माके शरीरको भस्म करनेको निर्वाण अग्नि कहा है। अमरकोशकार भी लिखते हैं—"निर्वाणो मुनिवह्न्यादौ" मुनिके शरीरको भस्म करनेवाली अग्निको निर्वाण कहते हैं। गार्हपत्याग्नि आहवनीयाग्नि दक्षिणाग्नि श्रीतीर्थङ्कर गणधर सामान्य केवलीके शरीरको भस्म करने वाली अग्नियोंके नाम हैं। इससे भली भांति जाना जाता है कि श्री जिनसेनस्वामीने गर्भाधानसे लेकर निर्वाण पर्यन्त जो क्रियायें वर्णन की उन्हींमें स्मशान पर्यन्त क्रियायें भी आगईं। निर्वाण मुक्तात्माके मृतक शरीरके संस्कारान्तर्गत हो साधारण मृतक संस्कार आगया, परन्तु निर्वाण पर्यन्त यह ध्येय उत्तम है श्रेष्ठ है मोक्ष पर्यन्त होनेसे मोक्ष मार्गमें हैं और दूसरोंने स्मशान पर्यन्त कहा सो स्मशान पर्यन्त संसार है ध्येय संसारका है, फिर भी इसमें असर्वज्ञ कल्पित मिथ्याभिनिवेशसे दूषित होनेकी संभावना है तथापि स्त्रीप्रसूति गर्भपात असंस्कृत बालक बालिकादिक मृतक संस्कारादिक व सूतक पातकादिकके विशेष कथनके आर्ष ग्रन्थ नहीं मिलते। जैसे गर्भाधान विवाहादिक क्रियाओंका

उल्लेख व मन्त्रोंका उल्लेख किया परन्तु विवाहादि क्रियाओंका सविस्तर वर्णन नहीं। इसी प्रकार मूलाचारादि शास्त्रोंमें सूतकादिका निर्देश है, विशेष कथन नहीं। इस पर विद्वज्जनबोधक शास्त्रमें पं० पन्नालालसंघी दूनी वालोंने लिखा है कि इस विषयके आर्ष ग्रन्थ तो मिलते नहीं तबतक अन्यग्रन्थोंमें जो लिखा है वही प्रमाण करो। ये विषय प्रायः सोमसेन त्रिवर्णाचारमें या जिनसेन त्रिवर्णाचारमें हैं। इतने लिखनेका तात्पर्य यह है कि गर्भाधानसे लेकर मरण पर्यन्त संस्कार मान तो जिनसेनस्वामीने भी क्योंकि भगवान्‌का निर्वाण होने पर इन्द्रादिक देवों ने आकर भगवान्‌के शरीरको पराद्धर्य पालकीमें विराजमान कर निर्वाणभूमिपर अग्नि-कुमार देवोंकी मुकुटोंसे उत्पन्न तथा चन्दन अगर कपूर केशर सुगंधित और घी दुग्ध द्वारा बढ़ी अग्निसे भगवान्‌का शरीर पर्यायान्तरको प्राप्त हुआ।

> शरीरं भर्तुरस्येति पराद्धर्यशिविकार्पितं ।
> अग्नीन्द्ररत्नभाभासिप्रोत्तुंगमुकुटोद्भुवा ॥३४४॥
> चन्दनागुरुकर्पूरपारीकाश्मीरजादिभिः ।
> घृतक्षीरादिभिश्चाप्तवृद्धिना हुतभोजिना ॥३४५॥
> जगद्गृहस्य सौगन्ध्यं संपाद्याभूतपूर्वकं ।
> तदाकारोपमर्देन पर्यायान्तरमानयत् ॥३४६॥

इन श्लोकोंके उपर्युक्त अर्थसे भगवान्‌के शरीरका संस्कार चिन्दन अगर कपूर केशरसे किया और घी दुग्धसे अग्नको बढ़ाई

लिखी (परार्द्धा पालकीसे कोई विशिष्ट आसन समझना) इससे संस्कार विशेष तो माना ही यह तो निर्वाण प्राप्त शरीरका संस्कार माना। अब सांसारिक गत्यन्तर जानेवाले साधारण मनुष्य शरीरका क्या संस्कार किया जाय यह प्रश्न उपस्थित होता है, उसका चन्दनादि द्रव्यसे और उसके अभावमें साधारण इन्धनादिसे संस्कार करे। गौण रीतिसे उत्तर चन्दनादि निर्देशसे हो गया विशेषकी विवक्षा नहीं क्योंकि यहां उत्कृष्ट ध्येय निर्वाण है इसीसे श्रीआदिपुराणोक्त ५३ क्रियाओंमेंसे जिनरूपता २५ पचीसवीं क्रिया तक तो ये ही त्रिवर्णाचारमें ली हैं और उसके आगेकी क्रियाये छोड़ दीं तथा निर्वाण और मृत संस्कार समकक्ष में लिखकर अर्थात् मृत संस्कार २६ और निर्वाण २७ वीं और इसके आगे पिंडदान २८ श्राद्ध २९ जननाशौच ३० मृताशौच ३१ प्रायश्चित्त ३२ तीर्थयात्रा ३३ ये छह क्रियायें और लीं और मौनाध्ययनवृत्तत्व आदिक दीक्षान्वय क्रियायें गृहस्थाश्रमी इनके योग्य नहीं इससे वे छोड़ दीं तथा कर्त्रन्वय क्रियायें ७ सप्त परमस्थान रूप इनको गृहस्थाश्रममें भावनारूपसे लीं इससे त्रिवर्णाचारमें दीक्षान्वय क्रियायें छोड़ दीं उन क्रियाओंका पात्र गृहस्थ नहीं अब जो छह क्रियायें ऋषिमार्गसे अधिक लिखी हैं उनमें जननाशौच मृताशौच प्रायश्चित्त तीर्थयात्रा इन ४ का तो निर्देश आर्षग्रन्थोंमें मिलता है सो जिस प्रकार आर्षग्रन्थोंसे मिलान हो उस प्रकार लेना और श्राद्ध व्यवहारमें कृतज्ञता प्रदर्शक आहारदान था सो अब लोकमूढ़तामें परिणत होनेसे नहीं लेना

चाहिये। ये विज्ञान भी एक माहात्म्यका हो अन्यथा प्रकल्पित अर्थ प्रतीत होता है, अग्राह्य है। सोमसेनजीने किस अभिप्रायसे संग्रहीत किये उनकी वेही जाने जो हमारी समझमें आया है सो लिखा है अब हम प्रकृत विषय पर चलते हैं कि गर्भाधानादि कियायें आदिपुराणमें लिखी है और त्रिवर्णाचारमें भी। त्रिवर्णाचारमें आचार्य सोमसेन लिखते है कि—

जिनसेनमुनिं नत्वा वैवाहविधिमुत्सवम्।
वक्ष्ये पुराणमार्गेण लौकिकाचारसिद्धये॥ २ ॥

इस श्लोकमें सोमसेनजीने श्रीजिनसेनस्वामीको नमस्कार किया और आदिपुराण मार्गसे विवाह विधि दिखलाते हैं ऐसा लिखा इससे यह ज्ञात होता है कि श्रीजिनसेनस्वामीके अनुकूल ही हम वर्णन करते है ऐसी प्रतिज्ञा करते हैं। फिर गर्भाधानके प्रारंभमें लिखते हैं—

गर्भाधानाङ्गभूतं यत् कर्म्मकुर्यादिनैव हि।
रात्रौ कुर्याद्विधानेन गर्भबीजस्य रोपणम् ॥२९॥

गर्भाधानके अङ्गभूत जो कर्म (क्रिया) है वह हवन पूजनादिक दिनमें ही करै और गर्भ बीजका आरोपण रात्रिमें विधानसे करे। श्रीआदि पुराणमें आचार्यप्रवर श्रीजिनसेनस्वामी लिखते हैं कि—

आधानं नाम गर्भादौ संस्कारो मन्त्रपूर्वकः।
पत्नीमृतुमतीं स्नातां पुरस्कृत्यार्हदिज्यया ॥७० पर्व ३८

ऋतुमती स्त्रीको स्नान कर चुकने पर अर्थात् पञ्चम छठवें दिन शुद्ध हो अरहंतदेवकी पूजा कर गर्भकी आदिमें मन्त्र पूर्वक संस्कारित करना सो आधान है। गर्भः आधीयते यस्यां इति आधानं अधिकरणे ल्युट्। गर्भ जिसमें धारण किया जाय उसको आधान कहते हैं। अर्थात् गर्भाशय कमलनाल समान गर्भ धारण करनेवाली शिरा अथवा-गर्भाशय विशिष्ट ऋतु स्नात स्त्री उसको मन्त्र पूर्वक संस्कारित करना अर्थात् गर्भ धारण करने वाली स्त्री अथवा गर्भाशय इनको मन्त्रोंसे संस्कारित करना। पहले श्रीअरहंतदेवको पूजा करके तब मन्त्रोंका संस्कार देना सोही लिखते हैं—

तत्रार्चनविधा चक्रत्रयं छत्रत्रयान्वितं।

जिनार्चामभितःस्थाप्य समं पुण्याग्निभिस्त्रिभिः ॥७१॥

श्री अरहंतदेवकी पूजा विधिमें चक्रत्रय अर्थात् धर्म्म चक्र तथा छत्र त्रयादि अष्टमंगल द्रव्यसहित श्रीजिन प्रतिमा स्थापन कर तीन अग्निके कुण्ड स्थापन कर पूजन करे इत्यादि पूजा विधि लिखो और १०८ आहुति पीठिका मन्त्रोंसे देवे फिर दंपती अर्थात् स्त्री पुरुष दोनों विषयानुराग विना केवल संतानके लिये समागम करें और गर्भाधानके मन्त्र पृथक् कहे। २७ पर्व ४० श्रीआदिपुराण।

सज्जातिभागीभव सद्गृहिभागी भवेति च।

पदद्वयमुदीर्यादौ पदानीमान्यतः पठेत् ॥९२॥

आदौ मुनीन्द्रभागीति भवेत्यन्ते पदं वदेत् ।
सुरेन्द्रभागीपरमराज्यभागीति च द्वयं ॥९३॥
आर्हन्त्यभागी भवेति पदमस्मादनन्तरम् ।
ततःपरमनिर्वाणभागी भव पदं भवेत् ॥९४॥
आधाने मन्त्र एषः स्यात् पूर्वमन्त्रपुरःसरः ।
विनियोगश्च मन्त्राणां यथाम्नायं प्रदर्शितः ॥९५॥

सज्जातिभागीभव १ सद्गृहि भागीभव २ मुनीन्द्र भागिभव ३ सुरेन्द्रभागि भव ४ परमराज्य भागी भव ५ आर्हन्त्य भागी भव ६ निर्वाण भागी भव ७ हमने पीठका मन्त्र सहित आधान गर्भाधान क्रियामें इन मन्त्रोंका विनियोग आम्नायपूर्वक प्रदर्शित किया ।

यहांपर विचारनेका स्थल है कि आचार्यप्रवर श्री जिनसेन स्वामीने गर्भाधानके गर्भारोपके पहिले दैवसिक क्रियामें श्री अरहंत देवका पूजन और हवन करके उन सन्तानके इच्छुक स्त्री पुरुषके ऊपर बाह्य संस्कार बतलाया कि उन स्त्री पुरुषोंके धर्माचरण रूप विशुद्ध भाव हों जिससे सन्तानके ऊपर अच्छा असर पड़े, परन्तु परिणाम तो क्षण क्षणमें परिणमन करते हैं, बीजारोपण समयमें वेही परिणाम रहैं, नियम नहीं । धर्माचरण क्रिया दिन में, गर्भारोपण क्रिया रात्रिमें । यह कार्यकारण एक समयमें नहीं रहनेसे रज वीर्य रूप परमाणुओंमें संस्कार नहीं भया परन्तु मृगमदवासनावासित वस्त्रको तरह अर्थात् जैसे कस्तूरी जिस कपड़ेमें रख दी और उस कस्तूरीको हटा देने पर भी उस कपड़ेमें

सुगन्ध रह जाती है उसी प्रकार वह दिनके संस्कारका असर उस रज वीर्य पर परम्परा सम्बन्धसे रात्रिमें भी पहुंचता है तथापि साक्षात् सम्बन्धकी तो त्रुटि रह जाती है। दूसरे श्री आचार्य प्रवरकी इस उक्तिसे कि—

आधानं नाम गर्भादा संस्कारो मन्त्रपूर्वकः।
पत्नीमृतुमतीं स्नातां पुरस्कृत्यार्हदिज्यया।

पहले भगवान्‌की पूजा करके फिर गर्भकी आदिमें उस ऋतुमति स्नानसे शुद्ध पत्नीका मन्त्र पूर्वक संस्कारित करना यहां पर दंपती नहीं लिये और पूजनमें स्त्री पुरुष दोनों लिये इससे यह ध्वनि निकलती है कि दिनमें प्रथमही अरहंत भगवान्‌की पूजाकर हवन करना क्रियाके बाद गर्भकी आदिमें ऋतुमती स्नात पत्नीके रजको आयुर्वेद (वैद्यक शास्त्र) अनुसार बाह्य द्रव्य औषधियोंसे संस्कारितकर अन्तरंगमें मन्त्रोंका स्मरण कर अनन्तर बीजारोपण करना। इसी आशयसे श्रीसोमसेन लिखते है-गर्भाधानकी अंगभूत भगवत पूजनादि क्रिया दिनमें ही करे रात्रिमे बिजारोपण करे यदि यह अभिप्राय आचार्य महाराजका नही है तो आधान शब्दका यौगिकार्थ तो यही होता है कि जिसमें गर्भ धारण किया जाय ऐसा गर्भाशय स्थान। ऋतुमती स्नात हुईको उद्देश्य लेकर मंत्र पूर्वक जो संस्कार वह आधान है अर्थात् गर्भ धारण मन्त्र संस्कार पूर्वक होना चहिये, वह मंत्र संस्कार स्त्रीके शरीरपर करै। आधान का संस्कार तो यौगिकार्थसे होता नहीं किन्तु रूढीसे ही समझा जायगा। दूसरी बात यह है कि आचार्य महाराजने जो मंत्र कहे है

उसमें (मव) क्रिया मध्यम पुरुषकी है सो गर्भमें आनेवाले प्राणीके लिये कैसे हो सकती है समक्षमेंही प्रयोग होना चाहिये था, सम्भावना अथवा अप्राप्त प्रार्थना रूप आशीर्वादमें बिना समक्ष ऐसी क्रियाका प्रयोग यह दिखाता है कि गर्भाधान होने बाद दूसरे दिन संस्कारित करनेके हैं या तो श्रीजिनस्वामीने गोप्यक्रियाको प्रच्छन्न गोप्य रख दिया और प्रगटरूप क्रियाका वर्णन किया है या जितना आचार्य महाराजने आदिपुराणमें वर्णन किया है उतनी ही विधि सर्वज्ञ आगमानुकूल है तो उतनी ही गर्भाधान विधि होगी जैसा आपने लिखा है कि 'विनियोगश्च मन्त्राणां यथाम्नायं प्रदर्शितः' जैसा आम्नाय है वैसा हमने मन्त्रोंका विनियोग दिखलाया अधिक विधिमें जब तक ऋषि प्रणीत वाक्य न मिलें तब तक विश्वास करने योग्य तो हम नहीं कहते। कौन जाने कहांसे लाकर रख दी हो। सोमसेन भट्टारकजीने उपयोगी समझ अन्य शास्त्रोंकी छाया लेकर ही लिख दिया हो परन्तु हमारे भाइयोंको यह बात ध्यानमें रखना चाहिये कि श्रीवर्द्धमान भगवान्‌को मोक्ष गये वर्तमानके ऊहापोहसे ढाई हजार वर्षके लगभग होचुके इसमें जाने कितने हेरफेर हो गये हमारे सैकड़ों ग्रन्थ ज्योतिष्क वैद्यक कोश साहित्य पुराण यंत्र मंत्र राजनीति शिल्पकला कौशलादिके अजैन लोगोंने जैनमङ्गलाचरणके और प्रशस्तिके श्लोक हटाकर अपने मतके रखकर अपने बना लिये। बहुतसे मन्तव्य अभिप्राय पदार्थोंके लक्षण अपने शास्त्रोंमें कुछ हेरफेर करके लिख लिये। इस उदाहरणके लिये दो चार ग्रन्थ लिखते हैं जैसे साहित्यमें काव्य

प्रकाश, वाग्भट्टालङ्कार, व्याकरणमें कलाप व्याकरण काशिकावृत्ति वैद्यकमें वाग्भट्ट अष्टांगहृदय, कोशमें अमरकोश विश्वकोश, ज्योतिषमें जैनेन्द्रग्रन्थमाला, वर्षप्रबोध, मानसागरीपद्धति प्रश्नज्ञान प्रदीप वाराहीसंहिता नरपति जयचर्या यामलक, राजनीतिमें चाणिक्यनीति, शिल्पमें राजवल्लभ और भी कई ग्रन्थोंमें सन्देह होता है जैसे बृहत पाराशर है बहुतोंका उद्धार माणिकचन्द्र दिगम्बर जैनग्रन्थमालाने किया है जैसे नीतिवाक्यामृत विक्रान्त कौरवी नाटक विश्वलोचनकोश पञ्चतन्त्र तथा पञ्चतन्त्रमेंसे निकाला हुआ हितोपदेश आज भारतवर्षमें ही नहीं यूरोप जर्मनी तकके विद्यालयोंमे पढाया जाता है यह भी दि० जैनाचार्यका बनाया हुआ है जिसके विषयमें मुझे कुछ याद है कि नाथूरामजी प्रेमीने किसी पत्रमें लिखा भी था कि इन ग्रन्थोंके सिवाय गर्ग ऋषिपुत्र गौतम कश्यप इत्यादि दि०जैनमुनियोंको भी अपना लिख मारा है। गर्ग मुनिका बनाया हुआ १ ग्रन्थ सूरीपुर-बटेश्वरके दिगम्बर जैनमन्दिरमें है। ऋषिपुत्रका बनाया हुआ जैननिमित्तज्ञान सं० १६०० का लिखा हुआ प्राकृत ग्रन्थ मेरे पास है, मैंने एक ज्योतिषीके पास छपी हुई भृगुसंहितामें भक्तामरस्तोत्र देखा तथा राजा चन्द्रगुप्त जिन्होंने अपने शासनकालमें राज्यको प्रजातन्त्र सत्ता बनाकर राज्य शासन कर चिरकाल प्रजासुखी कर भारत भरमें यश प्राप्त किया।

इतिहासमें लिखा पढ़ा है उनको भी मुद्रा राक्षसमें मोर नाइनका दासीपुत्र लिख मारा जो श्रीभद्रबाहु श्रुतकेवलीके निकट राज्य

स्वामी दिगम्बरी मुनिदीक्षा धारण कर तपश्चरण किया और जैन गिरीको चन्द्र गुफामें सन्यास धारण कर स्वर्ग प्राप्त किया। राजा परिमाल अयचन्द्रजी विक्रम सं० १२०० की शताब्दीमें हुये चन्देले राव इत्यादि सब जैन हुये जिनको आल्हामें गाते हैं इत्यादि हेर फेर इतने दिनोंमें हो गये पदार्थोंकी असलियत निकालना दुस्तर होगया। धर्मको रक्षाके तीन कारण हैं, प्रथम शास्त्र १, दूसरे भगवान्के पंचकल्याणी तीर्थ क्षेत्र और अतिशय क्षेत्र, तीसरे दिगम्बर जैन प्रतिमा जिनमन्दिर इन तीनों कारणोंमेंहो हमारे दिगम्बर जैन भाई आपसमें घरमें ही छोटी २ बातोंमें हो जिद्दमें कोई बड़ी भारी तत्त्व विवेचन नहीं परालका कूटना उसीमें दिन गमा कर तथा कुछ अपने प्रमादसे पैसेके लालचसे मानसे स्वार्थ और नपुंसकतासे कर्तव्य पथसे च्युत हो शास्त्र तीर्थ मन्दिर आधेसे ज्यादे खो बैठे। इस दुनियामें भारतवर्षकी भूमिमें तथा और जगह भी कंकड़ी कंकड़ी पर जैनधर्म लिखा पड़ा है परन्तु हमारे हाथमें कुछ नहीं, थोड़ासा लक्ष्य कराते है—जैसे बद्रीनारायणजी हजारों लाखोंकी संख्यामें अजैन जाते हैं और पूजते हैं। अपनेको कृतकृत्य मानते हैं परन्तु वह मूर्ति किसकी श्रीऋषभदेव स्वामी की। बेलका चिन्ह पद्मासन श्यामवर्ण एक सवा हाथ ऊंची नाशाग्रदृष्टि ध्यानारूढ़ परम वीतरागता धरे दिगम्बर विराजमान है जिनके ऊपर सफेद चाँदीका बड़ा भारी छत्र है हमने फोटोका दर्शन किया औरोंसे गयेहुये यात्रियोंसे सुना। झूलादि द्वारा जाने से वह अगम्य और भागीरथजी आदि सगर चक्रवर्तीके पुत्रोंसे

कोरी गई कालिकाका चिन्ह प्रद्योत होता है . वह श्रृंगार सहित पूज्य है। इसीप्रकार कर्णाटक प्रदेशमें मूडविद्रीसे चोरी गई हुई श्रीत्रिभुवन तिलक चिन्तामणि पार्श्वनाथजीकी पद्मासन खड्गासन मूर्ति आज विट्ठोबाकृष्ण रूपमें पन्धरपुरमें कुछ दूरीपर पुज रही है जिसका उल्लेख स्वामि कार्तिकेयानुप्रेक्षामें—

तिहुअणतिलयं देवं वंदित्ता तिहु ष्पेद परिपूज्जं।

इस मंगलाचरणमें किया है इत्यादि बहुत हेरफेर होगये, पर हमारे भाई अबतक घर की लडाईमें दिमाक लड़ाते हैं खेद है कहांतक कहा जाय। सिद्धवरकूटमें नर्मदाके किनारे पर ओंकारेश्वरका मंदिर जैनमन्दिर था। इटावामें टिकुटा महादेवका जो मन्दिर बोला जाता है वह गजटियरोंमे दिगम्बर जिनमन्दिर लिखा है तथा कलश और शिखरसे तथा कुछ दिन दशवर्ष पहले शीतलप्रसादजीने जाकर दि० जिन प्रतिमायें खण्डित और कुछ साबित भी देखी, परन्तु सब अपन लोगोंके प्रमादसे हाथसे निकाल दिये तब कहिये हमारी चीज दूसरोंके यहाँ देखी यदि बुद्धिमानोंसे निकाल लेवे तो क्या दूसरोंकी कही जायगी? यही हुआ है कि इधर उधरके सब शास्त्रोंके देखनेसे ही पता लगता है कि यह अपनी है और यह पराई। झटसे यह कह देना कि यह तो अजैन शास्त्रोंसे फलानेने ले ली जैसा कि श्रीमान् न्यायतीर्थ पं० गजाधरलालजीने जो ट्रेक्ट लिखा है उसमें प्राणायामका खण्डन करते हुये लिखमारा है कि शुभचन्द्राचार्य भट्टारकने यह श्लोक वैशेषिक मतसे लेकर लिखा है अपना अजैन लोगोंके ग्रन्थोंसे

प्राणायामादि तथा पञ्चतत्वादि निरूपणकी छाया लेकर ज्ञाना-र्णवजी गढ़ डाला है अर्थात् ज्ञानार्णवजी भी भंडबंड भट्टारकोंका बनाया हुआ ग्रन्थ है। जिन शुभचन्द्राचार्यजीके विषयमें जैन सिद्धान्त भास्करमें ऐतिहासिक दृष्टिसे पूज्यमाना है कितना ज्ञान और वैराग्यका आत्मकल्याण करनेवाला ग्रन्थ है जिसकी टीका जयचन्द्ररायजी पुराने जयपुरके टोडरमलजी सदासुखजी समकालीन समकक्ष निष्पक्ष विद्वान थे जिन्होंने सर्वार्थ सिद्धि समयसारजी आदि की वचनिकाभी उन्होंने तो जिस ग्रन्थकी पूजाकी और आपकी दृष्टिमें वह असङ्गत हो गया !!!

इसी प्रकार श्री आदिपुराणजीका खण्डन श्रीसूर्यभानुजी वकील वा जुगुलकिशोरजी मुख्त्यारने कर डाला। पुराणके प्रबन्ध कल्पना कथा प्रवह्लिका प्रहेलिका ऐसे पञ्च अङ्ग होते है किसी हितके उद्देश्यसे निबन्ध लिखना प्रबन्ध है उस निबन्धको द्रव्य के पर्याय अंशकी मुख्यता लेकर अलङ्कारादि द्वारा युक्तियों द्वारा नवरससे भरी हुई (प्रतिभा) स्फुरायमाण सत्कवि की बुद्धिकी चातुर्यतासे नवीन ज्ञानकी छटासे द्रव्यकी होनेवाली सम्भवित अनेक परिणमन रूप पर्यायोंकी कल्पना करके कहना सो कल्पना है अर्थात् नोन मिर्च लगाकर एक पदार्थको पढने वालों को रोचक बना देना सो कल्पना है और कथा किसी चरित्र नायकका चरित्र वर्णन करना और प्रवह्लिका अन्तर्लापिका तथा प्रहेलिका बहिर्लापिका इन पांच अंगोंसे पुरान रचा जाता है। सदुप-देशकी शिक्षा देनेके लिये पुराण सत्य सच्चरित्रका उदाहरण है।

इसमें तरतमरूप सूक्ष्म तत्त्वका विवेच नहीं होता कथान्तर्गत कोई सूक्ष्म तत्वका विवेचन कविको करना हो तो प्रकरण विशेष कोई तरतम विवेचनका भी होता है तब पुराणमें जो कल्पना कल्पित पदार्थका कोई तरतम रूपसे खण्डन मण्डन करें तो दोनोंही व्यर्थ हैं सो ही किया गया था तब उसपरभी अपनेसे जो कुछ सेवा बनी थी पद्मावतीपुरवाल पत्रमें मन्तव्य प्रकाशित कर समीक्षक भाइयों से प्रार्थना की थी। तब प्रेमीजीने मरने और कोशने तककी नौबत कर डाली थी परन्तु वयोवृद्ध सहृदय श्रीमान् वकील साहब सूर्य-भानुजीने किसी पत्रमें प्रतिज्ञा प्रकाशितकी थी कि अब मैं शास्त्रोंका खण्डन नहीं करूंगा तब वे समीक्षायें बंद हुई थी ऐसा मुझे स्मरण है। अब भी मैं सहृदय विद्वानोंसे प्रार्थना करता हूं तथा श्रीमान् न्यायतीर्थ पं० गजाधरलालजीसे भी निवेदन करता हूं कि क्या आगा पीछा कुछ भी नहीं देखनेवाले इन सुधार वादियों के चक्रमें आपभी आ गये!! जो ज्ञानार्णवजी सरीखे ग्रन्थको भी भेषी भट्टारकोंका रचा बता दिया? भट्टारकोंका नाम भेषी आदि कुनामोंसे (बद्...) बदनाम तो हो ही गया है परन्तु इस निकृष्ट समयमें यदि वे जिनधर्ममें कुपुत्र भी न होते तो इन तीर्थ और शास्त्र तथा विशाल मन्दिर और मूर्तियोंकी सत्ताभी देखनेमें न आती। अब आप कौन कौन शास्त्रोंको फूकेंगे। अब धर्मके धोरियोंसे श्रीमान् धीमानोंसे आबाल वृद्धोंसे सुधार वादी अंग्रेजी विद्वान और शास्त्र पंडितोंसे तेरापंथी और बीस पंथियोंसे तथा नवीन और प्राचीन वृद्ध पंडितोंसे प्रार्थना है कि

कृपाकर आप लोग स्वमान्य ग्रन्थोंकी लिष्ट लिखकर प्रकाशित करैं तब हम समझेंगें कि इनका द्वादशांग श्रुत इतने ही ग्रन्थोंमें परिमित है। बाकीका सबलोक और सब संसारका पदार्थ आकाश को फाड़ कर श्रुतसे बाह्य अचानक आकस्मिक आ कूद पड़ा है जिससे वह किसीको मान्य नहीं। जब यह शास्त्रका निश्चित सिद्धान्त है कि संसारमें सतका विनाश नहीं और असत्‌का उत्पाद नहीं तब संसारमें कोई वस्तु अलीक निर्मूल झूठा नहीं किंतु हम अपने ज्ञानसे कुछका कुछ पदार्थ समझ लेवैं यही मिथ्यात्व है और यही अलीकता है। इतने कहनेका तात्पर्य यह है कि हमारे भाई लोग जो यह कहने लग जाते हैं कि यह दूसरोंके अन्य मतों-के ग्रन्थोंसे ले आये यह बिलकुल निर्मूल है।

संसारमें जो कुछ है वह सब द्वादशाङ्गश्रुत ज्ञानमें गोतरही है एक एक द्रव्यके अनन्त २ गुण और अनन्त २ पर्याये हैं और गुणतो ध्रुवोद्यी सदा एकसे और चौड़ाई रूप हैं जैसे एक दरी है उसमें चौड़ाई तो जो एकइंचमें है उतनी ही सारी दरीको लंबाईमें नापते चले जाइये सब जगह चौड़ाई ४ हाथकी होगी तो ४ हाथ एक इंचमें भी मिलेगी और पांच हाथ तक जावेंगे वहां तक ४ हाथही पावेंगे परन्तु लंबाई एक इंच दो इंच पांच हाथ तक बढ़ती जायगी इसी प्रकार द्रव्यमें गुण तो चौड़ाई रूप है और पर्याय लंबाई रूप है द्रव्य पर्यायों द्वारा परिणमन करते २ अनन्ता-नन्तकालतक लंबाई रूप है और गुण उसके जितने हैं उतने सर्व पर्यायोंमें अन्वय रूपसे वैसेही चले जांयगे और गुणोंकी जो

हालत बदलती रहेगी वह भी गुणोंकी पर्याय है और उसे अर्थ-पर्याय कहते हैं। इसप्रकार द्रव्योंकी जो अनन्तानन्त पर्यायें हैं उस पर्यायोंरूप उस हालतरूप जो द्रव्य उसको अर्थात् अनन्त धर्मात्मक द्रव्यको जिस हालतरूप है उसको अपेक्षा छोड़ नयविवक्षा छोड़ स्वेच्छासे एक धर्मकी एकान्त विवक्षासे और कहीं एक पदार्थमें भ्रमसे दूसरे पदार्थका अध्यारोपकर जैसे रज्जु (रस्सी)में सर्प ज्ञान इसप्रकारसे एक असली पदार्थ अनेक अन्यथा रूप कल्पनाओंसे वह अनेक मतोंमें छिन्नभिन्न होकर अनेक रूप हो रहा है। जैसे यह आत्मा चैतन्य सुखपिण्ड होकर भी संसारमें पुद्गलके सम्बन्धसे वैभाविक परणति द्वारा चैतन्य गुणविकारी होनेसे छिन्नभिन्न होकर आस्रव बंध संवर निर्जरादि अवस्थारूप परिणमन कर अनेक रूप हो रहा है उन सब अनेक विकारी भावों-मेंसे अपनी शुद्ध परणतिरूप शुद्ध चैतन्य स्वभावको अनुभवता जो सम्यग्दृष्टि जीव वह शुद्ध चैतन्यस्वरूप जो एकाकार परणति उसको समस्त नव पदार्थरूप परिणमनमेंसे एकाकार चैतन्य परिणतिको जो मुनिराज पृथक्-अलहदा कर उसीमें जो रमता है वही संसारसे निकलकर जन्ममरणरूप दुःखोंसे रहित हो जाता है।

इतने कहनेका तात्पर्य यह है कि जो हमारे भाई यह कहने लग जाते हैं कि यह तो ब्राह्मणोंकी ले ली, यह तो अन्य मतावलम्बियोंके ग्रन्थोंसे लेकर रख दी है। उन भाईयोंको विचारना चाहिये कि कभी सत्का नाश नहीं होता और कभी असत्का

कल्याण नहीं होता किन्तु जो सर्वज्ञ जिनदेव प्रणीत असली तत्व था उसको द्वादशांगमें छे छे आकर और लोगोंने मिथ्या-बुद्धिसे शब्दोंका अन्यथा अर्थ कर अर्थात् अर्थका अनर्थकर स्यद्वाद तत्वोंको विभाववाद्धरूप वर्णन कर उसका औरका और स्वरूप दिखाया यही मिथ्यात्व है। सम्यक्त्व गुणकी विकारी परणति ही तो मिथ्यात्व है। बुद्धिमान् सम्यग्दृष्टिका ध्येय पदार्थों की असलियत समझ पदार्थोंका शुद्ध स्वरूप ग्रहण करना है, विभावता छोड़नी, परन्तु यह बुद्धिमानी नहीं कि समूलसे पदार्थोंको फेंक देना कि नाकसे नाक आता है कानसे मैल थूक आता है आंख से कीचड़ आता है तो क्या यह बुद्धिमानी कहा जायगा कि नाक कान आंख काटके फेंक देवें ना फिर रहना ही क्या है, बुद्धिमान् तो इस मैलको दूरकर पदार्थोंको साफ कर लेगा। विद्वान लोग मेरे प्रति क्षमा करें एकसौ दोसौ वर्षोंसे कुछ आचार्योंकी यही नीति देखनेमें आई। आचार विचारोंका ही क्यों किन्तु सारी समाज कोही यह नीति देखी कि अपने भाइयोंकी बहनियोंका सुधार करना तो दुःशक्य हो गया किन्तु समाजसे उनको निकालना प्रारंभ किया सो करते २ यह दशाको यह जैन समाज प्राप्त हो गई है कि इने गिने गिनतियोंमें जैन लोग रह गये हैं यह सब परस्पर द्वेषाग्निका फल है।

संसारमें द्रव्य तो छही हैं, सात और पांच कभी होते नहीं और न होंगे किन्तु उन द्रव्योंकी अनन्त २ पर्याये हैं उन्हीं पर्यायोंको देख लोगोंने अपने २ मन्तव्यानुसार उसका वर्णन किया जिस

पुरुष का सम्यग्दृष्टि है उनका कथन तो पदार्थ को यथावस्तु लिये होगा और जिनको मिथ्यादृष्टि है उनका कथन बेजड़ (अलगँया पलगँयां) शाखाप्रतिशाखाओंमें घूमता हुआ अस्थिर अन्यथा औरका और बेजड़का होगा परन्तु पदार्थ तो वही विवेचनमें सम्यग्दृष्टिके है और वही मिथ्यादृष्टिके है सोही श्रीसर्वार्थसिद्धि राजवार्तिक आदि शास्त्रोंमें लिखा है कि मतिज्ञान श्रुतज्ञान विपर्यय भी होते हैं। स्वरूपविपर्यास भेदाभेदविपर्यास से अर्थात् पदार्थका कुछका कुछ स्वरूप कहनेसे तथा कुछका कुछ उन पदार्थोंके भेद कर ग्रहण करनेसे वेही मतिश्रुत मिथ्या होते हैं तो उनही रूपादिक को मिथ्यादृष्टि देखता है और उनही रूपादिकको सम्यग्दृष्टि देखता है इसमें मिथ्यादृष्टिके कहे हुये रूपादिक मिथ्या हैं और सम्यग्दृष्टिके कहेहुये रूपादिक सच्चे हैं इसमें पदार्थ भेद नहीं किन्तु दृष्टि और कथनका भेद है। इसी प्रकार उसी पदार्थ को अजैन शास्त्रोंमें कहा है और उसी पदार्थ को जैन शास्त्रोंमें कहा है परन्तु जैन शास्त्रोंमें कथन दूसरी तरहसे हैं और अन्य शास्त्रोंमें दूसरी तरहसे। तो वह पदार्थ दूसरोंसे लेकर गढ़ डाला है ऐसा कहनेवालोंको कुछ विचार कर कहना चाहिये। जब सर्वज्ञ प्रणीत आगमसे अन्यथा प्रतिपादन हो तब कुछ कहना चाहिये। ज्ञानार्णवजीमें जो पृथ्वी आदिक तत्त्वोंका तथा धारणाओंका जो कथन किया है और अजैन ग्रन्थोंमें जो कथन है उसमें उसमें बहुत अन्तर है। जड़ चेतनका फर्क है, इसी प्रकार वाग्भट्ट, अष्टाङ्गहृदय वैद्यक शास्त्र जो वाग्भट्टाचार्य वाग्भट्ट

लङ्कारके कर्ता हैं और जिन्होंने वाग्भट्टालंकारमें मंगलाचरण किया है तथा अलङ्कारोंके लक्षणोंमें उदाहरण दिये हैं उनसे स्पष्ट दिगम्बर जैन प्रतीत सिद्ध है।

श्रियं दिशतु वो देवः श्रीनाभेयजिनः सदा।
मोक्षमार्गं सतां ब्रूते यदागमपदावली॥ १॥

इस मंगलाचरणका यह अर्थ है कि जिन भगवान्के विहार समय आगमनमें देवकृत चौदह अतिशयोंमें भगवान् अन्तरीक्ष ४ अंगुल पृथ्वीसे ऊंचे आकाशमें गमन करते हैं उन चरणोंके नीचे देव सात कमलोंकी पंक्ति रचते जाते हैं, उस समय जो चरणोंकी पुष्प पंक्ति है वह सत्पुरुषोंको मोक्षमार्ग दिखला रही है अर्थात् 'गगनमिवनिर्लेपा' आकाशकी तरह निष्परिग्रही निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि ही साक्षात् मोक्षमार्गको दिखलाती है। कि इस प्रकार संसारके सब पदार्थोंके संसर्ग रहित यह नग्न अवस्था ही संसारसे छुड़ाती है, संसारसे मोक्ष होता है ऐसे श्रीनाभेयजिन आप लोगोंको मोक्ष लक्ष्मी देवें।

इसी प्रकार अष्टांग हृदय वैद्यकमें मंगलाचरण है—

रागादिरोगान् सततानुषक्तानशेषकायप्रसृतानशेषान्।
औत्सुक्य मोहारतिदान् जघान योऽपूर्ववैद्याय नमोस्तु तस्मै॥

जिन्होंने संसारी प्राणियोंके अनादि कालसे निरन्तर लगे हुये और समस्त काम विकारोंसे विस्तारको प्राप्त हुये अर्थात् आत्मामें परद्रव्य संसर्ग जनित विकारीभावरूप विभावभावोंसे

सर्वाङ्गव्यास और मोहका उत्सुकताल दूर देनेवाले ऐसे रागादि राग द्वेषादि रोगोंको जघान नष्ट कर दिया है ऐसे उन अपूर्व वैद्यराजको मेरा नमस्कार होहु अर्थात् जिनके द्रव्यकर्म ज्ञानावर्णादिक भावकर्म रागादिक नोकर्म शरीरादिक इन समस्त रोगोंसे रहित हैं उन अपूर्व वैद्य वीतराग सर्वज्ञ देव को नमस्कार होहु ।

यह अष्टांग हृदय वैद्यक शास्त्र श्रीवाग्भट्टाचार्यका बनाया हुआ है । पं० आशाधरजीने श्रीसागारधर्मामृतकी टीका की प्रशस्तिमें लिखा है कि वाग्भट्ट अष्टांग हृदयकी टीका की । इससे भी यह स्पष्ट है कि यह दि०जैन आचार्य वाग्भट्टकृत है परन्तु यहां ग्रन्थ अजैनोंके हाथमें जानेसे उन्होंने कुछ मांसके गुण और मांसमें औषधियोंका प्रयोग लिख दिया और कोई २ छापिल ग्रन्थमें मंगलाचरण भी बदला है जैसे—

रागादिरोगा सहजाः समूला येनाशु सर्वे जगतोप्यपास्ता ।
स्तमेकवैद्यं शिरसा नमामि वैद्यागमज्ञांश्च पितामहादीन् ॥

यहाँ पर श्लोक को इधर उधर करके और पितामह भोज्यादिक जोड़ दिया तोभी वीतरागता को न हटा सके इससे फिर पकड़े गये । जैनत्वहीका प्रदर्शन भया अब कहिये ऐसे ग्रन्थों को दूसरेके हाथोंमें गये हुयेको फिर भी निकालना था कि उसको अजैन बता देना था । श्रीमान् पं० श्रीलालजी पाटनी- इसके धोखेमें भी अजैन लिख मारा, यह कितनी बड़ी भारी भूल है । हमारे हजारों शास्त्र और हजारों प्रतिमायें दूसरोंके हाथोंमें

पहुंच कर विकृतताम है जैसे एक जलैया कह कर विकृपतामें है और है महावीर स्वामीकी प्रतिमा तथा मानस्तम्भ रांची जिलेमें और भी अनेक प्रदेशोंमें है।

ऐसी अवस्थामें बहुत विचार कर बोलना चाहिये। जब ज्ञानार्णवजी सरीखे ग्रन्थोंको ही अड़में फेकते हो और श्रीमान् सूर्यभानुजी वकीलने तथा जुगुलकिशोरजी मुख्तयारने नाथूरामजी प्रेमीजीने आदिपुराणजी भद्रबाहु संहिता आदिक ग्रन्थों पर हाथ साफ किया। अर्जुनलालजी सेठीने गोम्मटसार तक नहीं छोड़ा, स्त्री मुक्ति पुष्टिकी जिसमें प्रेमवक्रमल म तण्ड पर हाथ फेरा और श्रीमान् शीतलप्रसादजी ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण कर विधवा विवाहका उपदेशही नहीं देते किन्तु विधवाविवाह पानीपत में आकर कराया ऐसा सुननेमें आया और जैनमित्रमें विधवा विवाह जैन धर्ममें लिखा है ऐसा छपाया जिसको श्री महाशास्त्र तत्वार्थसूत्रमें परविवाहकरणे इत्यादि सूत्रमें ब्रह्मचारीके लिये लाञ्छन दिखलाया है, जिससे ऋषि प्रणीत ग्रन्थोंपर ही आघात होता है। ब्रह्मचारीको कुलीन विवाह कराना हो निषिद्ध तो रांडोंके ब्याह कराना कैसा ? यदि आपको श्रीउमास्वामी आचार्यके वचनों पर श्रद्धा थी तो ऐसा अकृत्य कार्य क्यों किया ? आप धर्म कार्य समझ कर दौड़े गये और पंडित दरबारीलालजीने श्री वर्तमान चौबीसोंमेंही कमी कर दी, तीर्थंकर्ही पास हुये है जिनको वर्तमानके बड़े बड़े इतिहासज्ञ भी अस्तित्व सिद्ध करते और जिन चौबीस तीर्थंकरोंका होना अजैन वेदपुराण उपनिषदें सिद्ध

करें और इनकी बुद्धिपर ऐसे पत्थर पड़े कि जिसका कुछ ठिकाना ही नहीं। ऐसा धर्ममें विप्लव होगया कि जोही आवे वही यह कह देना कि हमको यह प्रमाण नहीं तो हम उन महानुभावों से नम्र निवेदन करते हैं कि आप महानुभावोंको कौन २ ग्रंथ प्रमाण हैं उनको लिख छपा दें फिर जब उनको काम पड़े तब हम उन महानुभावोंसे उन कामोंके लिये जिनके लिये उन्हें काम पड़ता है उन ग्रन्थोंको हम मांगे और फिर वे उन कार्योंके लिये शास्त्र उपस्थित करें नहीं तो फिर वहां वहा गनिहो दूसरोंके मुंह ताकें। अपने तो कुछ आता जाता सोचा नहीं। उदाहरण जैसे श्रीमान् वैरिष्टर साहब चम्पतरायजीने एक जैन शास्त्रों द्वारा जैन लॉ तय्यार की है और उसमें अर्हन्नीति विवर संग्रह कर इन्द्रनन्दि संहिता आदि संहिताग्रन्थोंसे भी प्रमाण दिये हैं तथा मैं समझता हूं कुछ भद्रबाहु संहिताके भी प्रमाण हैं जिनको आप लोग धज्जीयां२ उड़ा रहे हैं। अब आप लोगोंसे दायभाग आदिमें हम श्रीमान् आचार्य प्रवर कुन्दकुन्दजी समन्तभद्रजी उमास्वामिजी आदिकी कृति चाहते हैं तथा हम यह भी निवेदन करते हैं कि श्री जिनप्रतिष्ठा वेदप्रतिष्ठाके सिवाय गृह प्रतिष्ठाका शास्त्र कोई विद्वान् महानुभाव हमें देंगे तो हम बड़े ही उनके चिर कृतज्ञ होंगे। इतना तो हमारे समझमें हमने देखा है सुना है कि श्रीमान् विद्वद्वर न्यायदिवाकर पं० पन्नालालजी नेमिचंद्र प्रतिष्ठापाठसे और श्री वसुनंदी प्रतिष्ठापाठ तथा पं० आशाधरके प्रतिष्ठा पाठसे प्रतिष्ठा कराते थे। हम साधर्मक रहे थे और श्री न्या० पं० पन्ना

लालजीके पिता श्रीमान् पं० झगरइलालजी थे, वे श्रीमान् पण्डित प्रवर भागचंदजीके साथ रहे, श्रीमान् पं० नरसिंहदासजी इन्होंने प्रतिष्ठा कराते हैं श्रीमान् पं० पन्नालालजी दूनीवालोंने श्री विद्वज्जन बोधकमें वसुनंदी प्रतिष्ठापाठका प्रमाण दिया है। श्री ज्ञानार्णवजीकी प्रमाणतामें और श्री शुभचंद्राचार्यजीकी प्रमाणता में श्रीजैनसिद्धांतभास्करकी किरणोंमें श्रीमान् बाबू पदमराज जी रानी वालोंने अनेक प्रमाण ऐतिहासिक दिये हैं और गोमट सारादि सिद्धांतों पर तो यह जैन धर्मही निर्भर है। ऐसे महान् ग्रंथोंपरही यदि दिगम्बर टीका टिप्पणी करें तो इस निर्बलताका भी कुछ हिसाब है, कुछ विचार कर तो कहना चाहिये! इतने लिखने से पाठकगण यह न समझ लेवें कि हमारा कहना यह है कि जैन ग्रन्थ नामसे चाहे जिसके बनाये हुये ग्रंथकी प्रमाणता स्वीकार कर लें नहीं किंतु जो ऋषि प्रणीत आगम है वह तो सर्वमान्य है और जो आर्ष ग्रन्थ नहीं किंतु गृहस्थ पंडित व भट्टारकोंके बनाये हुये हैं वे ऋषि प्रणीतसे मिलते हैं उन्हें प्रमाणित करने और जो ऋषि प्रणीत ग्रंथोंमें विषय नहीं देखा गया है और गृहस्थ विद्वानोंके व भट्टारकोंके बनाये ग्रंथ हैं उनमें वे बातें मिलती हैं और वे न्याय संगत हैं उचित समझमें आती हैं उन्हें तबतक प्रमाणित रखनी जबतक ऋषि प्रणीत शास्त्रोंमें निषेध न मिले परंतु अपनी मनगढ़ंतसे समझमें न आई और तुरन्त कहदिया यह तो असंगत है। तुम्हारी बुद्धिमें समझमें न आई तो वह असंगत हो जायगी कदापि नहीं। हमारे अन्य विद्वा-

गुरु तो नहीं किन्तु प्रतिष्ठा कार्यके विद्यागुरु श्रीमान् स्वर्गीय पं० भाक्षोलालजी सघी लंबेचू कारहल निवासी जो प्रखर संस्कृतके विद्वान् थे जिनकी चकाचूर व्युत्पत्ति थी जिन्होंने अपनी उमर भरमें गद्दीपर संस्कृत प्राकृत शास्त्रके सिवाय कभी भाषा वचनिका शास्त्र नहीं बांचा उनका कहना था कि जहां तक तुमसे बने शास्त्रीय वचनोंको अर्थात् शास्त्रमें लिखे हुये वचनोंको आगमानुसार सिद्ध करो। जब आगमसे किसी प्रकार भी सिद्ध न हों और आर्ष शास्त्रोंसे विरुद्ध वचन दीखे तब असंगत कहना चाहिये। इसी तो श्रीभगवती आराधनासारकी भाषा वचनिका श्रीमान् विद्वद्वर पं० सदासुखजीने की है उसमें उन्होने लिखा है कि मूल ग्रन्थ तो श्रीशिवकोटी दिगम्बराचार्यकृत है परन्तु संस्कृत टीका किसी श्वेताम्बर कृत है। उसके आश्रयसे भाषा वचनिका करी तो आप लिखते हैं कि संस्कृत टीका श्वेताम्बर कृत है तो हमने उसके आधारसे टीका की है इसमें कोई गलती मालूम हो तो मूल ग्रन्थसे शोधकर ग्रहण करना। हमने अपनी समझसे आगम से मिलान कर लिखा है। जिनके वचनों पर सर्वज्ञकृतिका विश्वास होता है उनकी बात तो आँखे मीचकर अन्ध विश्वाससे ग्रहण की जाती है और जिनके वचनों पर विश्वास नहीं, असर्वज्ञकृत हैं वे सार वचन ग्रहण किये जाते हैं और असार छोड़े जाते हैं परन्तु बुद्धि सार असार पहचाननेकी होनी चाहिये। जिस पुरुषने वर्तमानमें उपस्थित प्रायः बहुत शास्त्रोंका अवलोकन किया हो, पूर्वापर विचार किया हो और जिसको इस बातका भय हो कि

श्रीवीतराग सर्वदर्शी सर्वज्ञ अर्हत्प्रवचनसे कुछ भी मेरेसे अन्यथा प्रतिपादन न हो जाय, सर्वज्ञप्रणीत मार्गमें कोई खराबी न हो जाय जिससे अनन्त जीवोंकी मिथ्याबुद्धि होकर अहित हो, असली मार्ग छिप जाय तो मैं अनन्त संसारमें भ्रमणका कारण मिथ्यात्वका बन्धन कर दुःख भोगूं ऐसा जिनको भय होगा वह कभी भी पक्षपातसे वचन नहीं कहेगा। वक्ताका स्वार्थ हितसाधक छल कपट रहित निष्पक्ष कथन होना चाहिये। धर्मकथामें कोई स्वार्थ नहीं होता फिर किस लिये ऐंचातानी करना, हाँ, अपनीही समझकी भूल हो तो लाचारी है। यदि अपनी भूल शास्त्रसे मालूम हो जाय तो तुरन्तही उस मिथ्याबुद्धिको निकाल देना चाहिये। तो वह मिथ्यादृष्टि नहीं ऐसा ही श्रीगोमट्टसारजीमें कहा है "सुत्तादो तं सम्मं दरसिज्जंतं जदाण सद्दहदि। सो चेव हवइ मिच्छाइट्ठी जीवो तदो पहुदि॥ जबतक कोई पदार्थ समझमें नहीं आया और कोई असत्यपदार्थका ग्रहण करलिया यदि गुरु व शास्त्रसे पीछे निर्णय आनेपर झूठा मालूम हुआ तो तुरन्त छोड़ना चाहिये और जानकर भी फिर अपनी मिथ्या बुद्धिको न छोड़े हठ कर ग्रहणही करता जावे तो उसको उसदिनसे मिथ्यादृष्टि समझना चाहिये संसारमें कर्म परवश पनाकर भ्रमण है, बड़े बड़े बुद्धिमानो की बुद्धि चक्करमें आजाती है तो सरलपरिणामी धर्मभीरु तुरन्त हठको छोड़ देते हैं इस प्रकार जिनके धर्मका भय है उसीके सार असारकी पहिचान होसकी है, उसीके निष्पक्ष विचार होता है। वह "क्रोधाद्वा यदि वा लोभात् मानाद्वा यदि वा भयात्। नान्यथा

ब्रूते स एव सत्यवक्ता" जो क्रोधसे मानसे लोभसे मोहसे और तरह नहीं कहता वही सत्य वक्ता हो सक्ता है सोही श्रीआचार्य प्रवर गुणभद्राचार्यजी आत्मानुशासनमें लिखते हैं—

प्राज्ञः प्राप्तसमस्तशास्त्रहृदय प्रव्यक्तलोकस्थितिः ।
प्रास्ताशाप्रतिभापर प्रशमवान्, प्रागेव दृष्टोत्तरः ॥
प्रायः प्रश्नसहः प्रभुः परमनोहारी परानिन्दया ।
ब्रूयाद्धर्मकथां गणी गुणनिधि प्रस्पष्टमिष्टाक्षरः ॥

जो स्फुरायमाण बुद्धिवाला समस्त शास्त्रोंका जिसने रहस्य जाना हो लोकस्थिति लोकप्रवाहको समझा हो लोक-प्रवाह किस प्रकार है। आशारहित प्रतिभाशाली शान्तचित्त पहिलेसे ही उत्तर जाननेवाला प्रश्न सहन करनेवाला जिसका सबपर प्रभाव पड़ता हो परके मनको प्रियहो दूसरेकी निन्दा करनेके अर्थ उप-देश देनेवाला स्तुत न हुआ हो गुणरूप व्याकरणादि पठित स्पष्ट अक्षर और मीठा भाषा हो ऐसे गणधरको आदि लेकर इसरोतक कुछ भी गुण रखनेवाला सदुपदेशदाता वक्ता हो सक्ता है।

ऐसे शास्त्रज्ञ द्वाराही सारता असारता जानी जाती है और इस समय पूर्व शास्त्रज्ञ विद्वान् लोग बहुत कुछ मार्ग दिखा गये हैं उनसे भी बहुतसी बातोंका निर्णय होता है परन्तु उनके विचारो-मेंसे अपने पक्षकी और मतलबकी बातें लेलेनी और बाकी छोड़ देनी इस ऐंचातानीसे तो सार असारका निर्णय होता नहीं, निर्णय बुद्धिसेही निर्णय होता है।

इसलिये लेख पूर्वापर विचारके साथ होना चाहिये। अब हम प्रकृत विषय पर आते हैं। जो गर्भाधानके विषयमें हम लिख रहे थे जो विधि और मन्त्र श्रीआदिपुराणमें लिखे हैं उसको सोमसेन जी स्वीकार करते हुये लिखते हैं कि—

गर्भाधानांगभूतं यत्कर्म कुर्याद्दिवैव हि
रात्रौ कुर्याद्विधानेन गर्भबीजस्य रोपणम् ॥

गर्भाधानके अंगभूत जो अर्हन्तसिद्धादि पञ्चपरमेष्ठि पूजन तथा हवन दिनमें ही कर ले और गर्भका बीजारोपण रात्रिको करे। यद्यपि श्रीजिनसेनस्वामीने आदिपुराणमें यह लिखा है कि हमने जो गर्भाधानादि निर्वाण पर्यन्त त्रेपन क्रियायें लिखी हैं वे ही जिनधर्ममें स्वीकार करनी और जो अन्य अजैन लोगोंने गर्भाधानादि श्मशान तक क्रियायें मानी हैं वे न लेनी। इस कथनसे त्रिवर्णाचारादिमें गर्भाधानादि श्मशान पर्यन्त जो क्रियायें लिखी हैं उनका भी निषेध हो जाता है परन्तु श्मशान तक क्रियायें जो त्रिवर्णाचारमें वर्णन की हैं उन ३२ क्रियाओंमें गर्भाधानसे निर्वाण तक २७ क्रियायें तो आदिपुराण लिखित ५३ त्रेपन क्रियाओंमें की क्रियायें ली हैं और मृतक संस्कार १ जन्मसूतक २ मृतकसूतक ३ श्राद्ध ४ पिण्डदान ५ ये पाँच क्रियायें आचार्य श्रीजिनसेन स्वामीके कथनसे अधिक हैं। इनमें मृतक संस्कार जन्मसूतक मृतकसूतक इन तीन क्रियाओंका भी निर्देश प्रायः पुराणोंमें लिखा है कि रावणका मृतक संस्कार किया। अमुकका मृतक संस्कार किया। चाहे मृतकका

संस्कार त्रिवर्णाचारसे न मिले परन्तु मृतककी कोई विधि तो होनी चाहिये। क्योंकि मोक्षमार्गमें यह निर्वाण ही अन्तिम अवस्था है और गृहस्थाश्रममें अन्तिम मृतक संस्कार है सो निर्वाण प्राप्त परमात्माके परमौदारिक शरीरका संस्कार अगर कपूर चन्दनादिसे अग्निकुमार देवोंके मुकुटसे उत्पन्न अग्नि द्वारा संस्कार श्रीआदिपुराणमें ही लिखित है और उसीका अनुकरण सारे संसारमें अग्नि संस्कार प्रचलित ही है और भस्मी क्षीरसमुद्रमें क्षेपण की गई इसका अनुकरण भस्मीका नदीमें क्षेपण करनेका है और मूलसंघमें भस्म मस्तकादिमें लोगोंने लगा ली इससे जैनलोग नहीं डाले जाते हैं इसमें मृतक संस्कारका बहुतसा भाग तो आर्ष ग्रन्थोंमें मिलता है परन्तु त्रिवर्णाचार लिखित मन्त्र भाग नहीं मिलता सो विशेष विधि कहीं दिखाई होवे तो मिले जननाशौच मरणाशौचका कथन भी मूलाचारादिमें आया है परन्तु निर्देश मात्र ही है। इससे केवल यही सिद्ध होता है कि जननाशौच मरणाशौच तो आचार्योंने माना है अब विशेष विधि यथा है सो त्रिवर्णाचारमें है और जगह भी कहीं २ मिलती है। सिद्धजनबोधकमें भी पं० पन्नालालजी दूनीवालोंने यही लिखा है कि सूतकका कथन मूलाचारमें निर्देश मात्र है। जबतक आर्षग्रंथोंमें विशेष विधि न मिले तबतक जिस प्रकार जहां कहीं इन ग्रन्थोंमें है वही प्रमाण करना। इसमें मृतक संस्कार जननाशौच मरणाशौच ये तीन क्रियायें सम्मत्ति हैं हां और आर्ष ग्रन्थोंसे भी तो स्वीकृत है। मालूम होता है कि आदिपुराणमें अजैन क्रियाओंका निषेध किया है।

यह दूसरी बात है कि त्रिवर्णाचार लिखित विधिमें कोई दूसरे प्रकारसे विधि हो तो भले ही हो परन्तु गृहस्थोंको इन तीन क्रियाओंसे भी सम्बन्ध है अब रही बात श्राद्ध और पिण्डदानकी सो दोनों क्रियायें एक कृतज्ञता प्रदर्शक दानकी लौकिक प्रथा होगी शिष्ट आत्माके लिये सो वह लोकमूढ़तामें सबके लिये परिणत हो जानेसे लोकप्रवाहमें पड़ गई इससे इनका निषेध कर दिया है। आचार्योंने इसलिये ये दोनों क्रियायें अग्राह्य कहीं। सोमसेनजीने बिना विचारे लोकप्रवाहमें पड़कर लिख दिया है सो ही लोकप्रवाह अब भी है त्रिवर्णाचारमें जैसा लिखा है वैसे ही अब भी है। जब मुर्दोको ले जाते है तब रास्तेमें आधी दूर पर रखते हैं पैर दक्षिणको करके कंधा बदलते हैं जैसा त्रिवर्णाचारमें लिखा है। अब यह कथन आर्षमार्ग हो या न हो परन्तु श्राद्ध तथा पिण्डदानका निषेध आर्ष ग्रन्थोंमें मिलता है इसमें अग्राह्य है। लोक मूढ़तामें परिणत होनेसे निषेध किया है। पिण्डदानका अर्थ ब्राह्मण लोग करते हैं मृतकको भोजन देना परन्तु जैनसिद्धान्तसे मृत आत्मा दूसरी योनिके शरीरमें पहुंच गया पर्याय बदल गई वहां अवस्थाही दूसरी होगयी। पर्याय पलटनेसे पर्याय ज्ञानमा पलट जाता है। पहली पर्यायकी याद नहीं रहती तब आहार कौन लेवे। वास्तविक बात क्या है कि जिस दिन कोई मनुष्य मरता है उस दिनसे बारहवें तक अर्थात् श्राद्धके दिन तक जो मनुष्य अग्नि संस्कार करता है वह मृतकके कलेवर शरीरमें दो घड़ी बाद असंख्यात अनन्त जीवोंकी उत्पत्ति हो जाती है और कुछ औदारिक शरीरमें ऐसे भी निगोद

रहती है उन असंख्यात अनन्त जीवोंके घातसे वह मनुष्य सूतकी पातकी कहलाता है और बारह दिन तक जब तक शुद्धि न हो जावे तबतक उसके हाथका कोई खाता नहीं और उसके सह-भोजिता और सहवाससे उसके कुटुम्बियों कोभी उसमेंही शामिल गिना जाता है और उसी हिंसा दोषसे वह देव पूजा गुरूपासना तथा पात्र दानका भी अधिकारी नहीं रहता इसी हिंसाके कारण सूतक माना जाता है परन्तु आजकलकी बात दूसरी है एक मत ऐसा चल गया है कि बुद्धमें अनुभव शून्यताके कारण इस हिंसा को मानता कौन है ? एक २ ऐसे मनुष्य होते हैं कि पञ्चेन्द्रिय प्राणीको मारकर भी हाथ नहीं धोते फिर इस छोटे २ जन्तुओंकी हिंसाको गिनना कौन है एक जैन धर्म ही ऐसा है कि कहता है कि किसी प्राणीकी भी हिंसा न हो वह काम करो परन्तु गृहस्थाश्रममें जो अनिवार्य हिंसा स्वयमेव हो जाती है उससे लाचारी है इसलिये प्रायश्चित्त बतलाया है। जो मनुष्य कुटुम्बका आयु पूरी कर मर गया उसका अग्निसंस्कार करना ही होगा यदि अग्निसंस्कार न करके जल प्रवाह करेंगे तो उस क्रियामें भी जल संपर्कसे उन प्राणियोंका जो मृतक कलेवरमें हैं उनकी हिंसा होगी और जलमें रहनेवाले त्रसोंकी और हिंसा होगी तथा गड़ने पर मिट्टीके संपर्क से भी उन जीवोंकी हिंसा होगी और मिट्टीमें जो जीव जलापनसे त्रसहोते हैं उनकी हिंसा होगी इससे उत्तम अग्नि संस्कार ही बताया और अग्नि संस्कार उन कुटुम्बियोंको लाचारीसे करना ही होगा। घरसे बाहर फेंकनेपर भी उन कुटुम्बियोंके माथे हिंसा

लगेगी इससे बच नहीं सके। इसीसे अग्नि संस्कार ही सबसे उत्तम है और वैसा करनेसे उन्हें प्रायश्चित्त लेना होगा। उस हिंसाकी निवृत्तिके लिये ही उन सूतकके दिनोंमें ब्रह्मचर्यसे रहना, एकभुक्ति करना, दान करना, दानमें पात्र दान तो होगा नहीं क्योंकि बारह दिन पर्यन्त उसके हाथका आहार अग्राह्य है इससे करुणा बुद्धिसे जो दीन दुःखित बुभुक्षित जो सर्वग्रास भक्षण करने वाले जैसा ही कुछ भोजन मिले उससे उदर पूर्ति करना ऐसे दीन मनुष्य व पशु गाय आदि उनको कुछ खिलाकर तब वे सूतक वाले भोजन करते हैं इस प्रथाको ब्राह्मण लोगोंने जो उस मृतकके कुटुम्बवाले भोजनके पहले पत्तल निकालकर किसी भूखे मनुष्य व गाय आदिक पशुको दिया देते हैं उसीको मृत प्राणीके लिये भोजन पहुंचता है ऐसा कहकर सिद्धान्त लिख मारा है। यही मिथ्या बुद्धि और इसीको देखा देखी वैसे ही बुद्धि सबने कर ली, शास्त्रोंमें भी लिख मारी इसीको विद्वान लोकमूढ़तासे कहते हैं। इसी मिथ्या बुद्धिसे दान करना आचार्योंने निषेध किया है इस लिये श्राद्ध और पिण्डदान जैनधर्मसे बाह्य है। जैनधर्म मिथ्या बुद्धिको ही छुड़ाता है। सोमसेनजीने त्रिवर्णाचारमें किस बुद्धिसे लिखा स्पष्ट आशय नहीं लिखा इसीसे आर्ष ग्रन्थोंसे मिलान नहीं होता ये दोनों क्रियायें अग्राह्य हैं परन्तु वैसी गर्भाधान विधि अग्राह्य नहीं। यह भले ही होवे कि आदिपुराणसे कथन भेद इतना है कि गर्भाधानका ऊपरी संस्कार पूजन हवन आदि क्रिया आदिपुराण कथित ये भी लिखते हैं परन्तु बीजारोपण विधि अधिक

लिखते हैं सो युक्तिसे तो असंगत मालूम नहीं होती जैसे जो त्रिफलादि कषायसे योनि धोना लिखा सो वैद्यक शास्त्र योनि दोषसे दुष्ट गर्भाशयके रजपरमाणुओंके शुद्ध करनेको लिखा है तथा केशरादि पवित्र वस्तुओंसे संस्कारित करना लिखा सो भी रज परमाणुओंको उत्तम बनानेके लिये हैं, यही बात मल्ल भागको जिससे लोग दिल्लगी हंसी उड़ाते हैं सो भाइयों को हंसी तो नहीं उड़ाना चाहिये क्योंकि पदार्थ विवेचनमें हंसी वे ही उड़ाते है जिनका मन व्यभिचारमें रहता है हंसी उड़ाना अच्छे पुरुषोंका काम नहीं। सत्पुरुषोंका काम पदार्थकी सत्यता असत्यता प्रगट कर देनी है। प्रथम तो पदार्थकी दृष्टिसे उस योनिका विचार किया जाय तो बीजारोपण ही उस योनिका कृत्य है। बीजारोपणका योनि आधार है उस योनिमें बीजारोपण ही होगा। योनि बीजारोपणके लिये ही हैं। हंसी करना कैसा! हंसी वहीं होती है जहां उसे व्यभिचार दृष्टिसे देखा जाय। केवल उसको विषय भोगका ही साधन समझा जाय। यदि ऐसा नहीं तो हंसी कैसी! जिस उपवंशादि द्रव्ययोनि और शोन वर्णादि सचित्ताचित्तादि भाव योनिसे तुम उत्पन्न हुये और तुम्हारे दादा परदादा आदि पूज्य पुरुष उपजे उस स्थानकी हंसी कैसी! फिर माता भगिनि स्त्री आदि लज्जावती कोई भी स्त्री हो जिसके प्रसव वेदना उठती हो और कोई२ समय प्राणोंकी भी जोखम आ जाती हो ऐसे स्थलमें दायी मेमसे ही नहीं किन्तु डाक्टर आदि पुरुषोंसे भी आप लोग उस समय उस गुप्तस्थानमें हाथ डाल

शस्त्र घुसाकर उलटे सीधे बालकको निकलवाते हैं। उस स्त्रीके प्राण रक्षाके लिये क्या वह स्थल आपकी हंसीका होता है! वहां आप नहीं हंसते क्योंकि वहां आपकी प्राणिरक्षाकी दृष्टि है वैसे ही जब बहिन बेटीकी बिदागीरी होती है तो उस समय बहिन बेटी अपने माबाप भाईयोंको मिल कर छातीसे स्पर्श कर जाते समय रुदन करती हुई जाती है तो उस समय मोह दृष्टिसे आंसु भर आते हैं उस समय क्या राग दृष्टि है, नहीं। उसी प्रकार पदार्थ कथनमें अच्छे बुरे और हंसीका स्थान नहीं होता इसी प्रकार गर्भाधानमें कामशास्त्रका भी सम्बन्ध है वहां भी कथन किया है वह पदार्थ भी वैसाही है जो वैसाही कहना भी होता। वैद्यक शास्त्रमें शारीरिक सूत्रमें स्त्रियोंके एक २ नशका वर्णन किया है वहां योनिके भी सब अवयवोंका शिरा सन्धिका भी कथन किया तो क्या हंसीका स्थान हो सक्ता है? जो हंसते हैं वे विषयके मदमाते हैं। जो लोग खेती करते हैं और जमीनमें बीज बोते हैं वे जमीनका कूड़ा करकट हटा कर जोत कर बीज बोने योग्य कर लेते हैं तब बीज बोते हैं। वही बीज सहस्रगुणा और हृष्ट पुष्ट उत्पन्न होता है। उसी प्रकार जिनको ऐसे बालक उत्पन्न करने होवें जो चक्रवर्ती सरीखे बुद्धिमान् धर्मनिष्ठ धर्म राज्य करनेवाले प्राणियोंके हितकी तरफ जिनकी दृष्टि हो हिंसात्मक दुष्ट पापोंका अपने राज्यमें नहीं प्रवर्तन करने देना ऐसे पुत्रोंकी उत्पत्तिके लिये उत्पत्ति स्थान गर्भाशयके रज वीर्यरूप पुद्गल परमाणुओंके पवित्र रूप परिणमन करनेके लिये अवश्य

संस्कारोंकी आवश्यकता होगी। ऊपरी संस्कारसे यदि कर्मोंके पुद्गल परमाणुओंमें परिणमन होता है। जिस ऊपरी संस्कारका परम्परा सम्बन्ध है तो साक्षात् सम्बन्धसे क्यों नहीं परिणमन हो सकता? जो सोमसेनजी बीजारोपणमें अन्तरंग संस्कार लिखते हैं यह विधि मैं नहीं कह सकता कि सोमसेनजीने किस शास्त्रसे लाकर रक्खी है और किस अभिप्रायसे रक्खा है। उनका अभिप्राय चाहे जैसाही हो और मन्त्र भाषामें भी कुछ हेरफेर होवे तथा विधिमें भी कुछ फर्क होवे यह होसकता है क्योंकि जब तक इस प्रकारका अभिप्राय आर्ष ग्रन्थोंमें न मिले तबतक प्रमाणित नहीं करना परन्तु अन्तरंग संस्कारकी संभवता तो दिखती है। ज्योतिषशास्त्रमें भी रजोधर्मसे लेकर सोलह रात्रि गर्भ रहनेकी कही। जिसमें चार रात्रि तो विषय करनेके लिये वर्जन की और चार रात्रिके बाद पाँचवीं रात्रिसे विषम रात्रिमें कन्या और सम रात्रिमें पुत्र होनेके लिये कहा, उसमें भी ११ ग्यारहवीं रात्रिको सन्तान बहुत दुष्ट होना लिखा और पुरुष वार सूर्य मंगल बृहस्पति वारमें। रतिमें पुरुषकी प्रबलता वीर्यकी आधिक्यसे पुत्र सन्तान और चन्द्रशुक्रवारमें रज की अधिकतासे स्त्रीके प्राबल्यसे कन्या सन्तान कही और शनि बुध नपुंसक वारोंमें कन्या पुत्र नपुंसक स्वभाव ऐसे दिखावे तो यह सब प्रकार उनकी दृष्टिमें प्रगट ऐसा कृत्य है या हंसीका स्थान है? जो लोग विषयकी तीव्र तृष्णासे तप्त अनेक कामोंसे मारे मारे चले आये और स्त्रीके पास पहुंचते हों वे जबरीसे पुत्र-

त्यागियोंकी तरह 'दमड़ार और बेड़ापारकी' कहावतको चरितार्थ करते हुये विषय-तृष्णाको बुझा डाला ऐसी दृष्टिसे पागलका कृत्य है ही। उत्तम सन्तान पैदा करनेके लिये ज्योतिष वैद्यक पदार्थ विद्या आत्म विद्या-मन्त्रादिका ज्ञाता हो कर उत्तम सन्तान पैदा करना चाहे तो अन्तरंग संस्कारकी संभवता अवश्य मालूम होती है। श्रीआदिपुराणमें श्री जिनसेन स्वामीने श्री ऋषभदेव भगवानके गर्भकल्याणकको दिखाते हुये १२ में पर्वमें श्रीमरुदेवी माताको अन्तरंगमें पुष्पवती होते हुये भी बाह्यमें रजोवती नहीं होती हुई दिखा कर गर्भधारण लिखा, परन्तु श्री नाभिराजाके साथ प्रसंग नहीं लिखा और गर्भधारण लिखा तो यहां कार्य कारणके विचारसे प्रसंग मानना ही होगा। श्री आचार्य प्रवरने जो नहीं लिखा सो इस कारणसे कि जो भगवान्के माता-पिता सो हमारे पहले माता पिता हुये फिर माता पिताके लिये प्रसंगको कहना बालकके लिये लज्जाका स्थल है इससे अपने लिये अनुचित समझ नहीं कहा तो भी समागम तो है ही। वैसेही अन्तरंग बीजारोपण संस्कार उपयुक्त मालूम होता है जो मन्त्र सोमसेनजीने लिखे हैं वे बहुतोंमें नास्तिकमें हंसी जैसे मालूम होते हैं। हम सुधारक दलके संतोषके लिये कहते हैं कि चाहे सोमसेनजीने अजैन ब्राह्मणोंने जैसे गौकी पूछमें योनिमें जैसे तेतीस करोड़ देवता मानलिये वैसे ही योनिमें रहनेवाले देवता मान गर्भाधानके बीजारोपणका मन्त्र लिखा है परन्तु शब्द कल्पद्रुमके समान होते हैं जैसे अभिप्रायसे अर्थ निकालो वैसाही अर्थ

निकल आता है। जैसे यहांपर त्रिवर्णाचारमें ह्रां ओ बीजारोपण के मन्त्र लिखे हैं वे इस प्रकार हैं। जैसे झांझरीजीने लिखे है—

ॐ ह्रीं क्लीं ब्लूं योनिस्थादेवते मम सत्पुत्रं जनयस्व

अ सि आ उ सा स्वाहा।

ॐ ह्रीं शरीरस्थायिनो देवता मां बलं ददातु स्वाहा॥

यहां पर इन मन्त्रोंमें योनिस्थ देवताओंसे सत्पुत्र और वीर्यमें बल होनेकी प्रार्थना की है। साधारणतया बाहिरी अर्थ यही होता है कि—हे योनिमें स्थित देवता! मम-मेरे श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न करो और दूसरे मंत्रमें यही लिखा है कि हे शरीरमें रहनेवाले देवता! मेरेको बल प्रदान करो। मुझे मालूम नहीं होता कि सोमसेनजी इतने अज्ञ भी थे कि जैनसिद्धान्तमें कहीं भी चारनिकायके देवोंमें से किसी भी प्रकारके देवका आवास योनिमें बतलाया हो सो नहीं बतलाया, इससे उलटे निषेधमें प्रमाण मिलते हैं। सबसे ज्यादा इधर उधर रहनेके कारणतोंके आवास कहे सो भी वृक्ष कोटर वन पर्वत गुफायें बतलाईं परन्तु अपवित्र मूत्र स्थान योनि रहनेका स्थान कैसे सगत होसकता है? चाहे इस विषयको सोमसेनजीने अन्य मतके ग्रन्थोंसे ही लेकर रख लिया हो परन्तु इधरका उधर होना साधारण बात है। भारत वर्ष एक क्षेत्रमें रहते हुये शास्त्रोंके अभिप्राय इधरके उधर बहुत किये जाते हैं। अन्य मतावलम्बी भी इसका अर्थ यही करते होंगे जब तो उनमेंसे एक वाममार्ग चल गया यही अर्थ करके। जैसे

अन्य मतावलम्बी विद्वान् पूजन करते समय हाथमें कुछ जल लेकर शिरके चारों तरफ दाहिने हाथको घुमा कर नाक पकड़ते हैं और आचमन करते हैं।

इसका अर्थ उन लोगोंमें कोई पूछे तो कोई विरला ही असली तात्पर्य बता सकेगा और नहींतो नहीं और अपने यहां भी पूजन करते समय देव शास्त्र गुरु पूजन करके पीछे इच्छामि भंते चेइय भत्ति काउस्सग्गो कउं तस्स लोचे यो इत्यादि पढ़कर श्वासका साधन कर कायोत्सर्ग पढ़ते हैं। अन्य मतवाले जो नाक पकड़ते हैं वह रूढ़िसे करते चले आते हैं। लोग बाहरी दृष्टान्तमें कहते हैं बात एक ही है चाहे सीधे नाक पकड़ लो चाहे घुमाकर। ये सब बातें जिसने नहीं समझा हैं वे कह देते हैं सीधे और घुमाकरके नाक पकड़नेमें एक बात कैसे हैं वह ऐसे है कि नाक स्वास साधन के लिये पकड़ी जाती है। क्योंकि कार्यातुर प्राणीको इधर उधर चलने चलाने काम करनेमें स्वांस ठहरा नहीं रहता जल्दी वेगसे चलने लग जाती है और यहां कायोत्सर्गमें णमोकार मन्त्रको तीन श्वासोच्छ्वासमें उच्चारण करना है इसलिये श्वास स्थिर करनेकी आवश्यकता है इसी लिये नाक पकड़के श्वासको ठीक करना है इससे नाक पकड़ी जाती है। उन्होंने तो उस क्रियाको ले लिया और मन्त्रका पता नहीं रूढ़ीसे वही करते चले आते हैं और अपने यहां भी कोई कायोत्सर्ग कर लेता है कोई करता ही नहीं और कायोत्सर्ग करना आवश्यक है कारण जो पूजाकी द्रव्य बनाने आदिमें आरंभ हुआ है हिंसा हुई है उसका प्रायश्चित्त भी

करना कि नहीं, इसी प्रकार शास्त्रका उपदेश देने वचनार्थम हुआ। वहां भी कायोत्सर्ग प्राचीन पुस्तकोंमें लिखा है। अब लोग आजकी सब उठाते जा रहे हैं तो पुस्तकके अवचोवनें जो कायोत्सर्ग लिखा है और उसकी विधि लिखी हैं वह भी अब छपेगालोंने उड़ा दिया है। कायोत्सर्ग विधि कोई २ प्राचीन पुस्तकों लिखी मिलती है हर एकमें नहीं। कायोत्सर्गमें ध्यानको साधनेसे ही तीन श्वासोच्छ्वासमें मन्त्र मनमें पढ़ा जाया। जैसे प्रथम श्वास निश्वासेकेन णमो अर्हंताणं णमो सिद्धाणं इति पदद्वयं पहली श्वास निश्वासमें अर्थात् पहले श्वासको भीतर खींचकर लेजानेमें णमो अर्हंताणं यह पद बोलना और भीतरसे निश्वासको निकालकर नीचे छोड़नेमें णमो सिद्धाणं यह पद बोलना फिर द्वितीय श्वास निश्वासेकेन णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाणं इति पदद्वयं दूसरी श्वास निश्वाससे अर्थात् भीतर श्वास खींचकर ले जानेमें णमो आइरियाणं इस पदको और भीतरसे बाहर फेंकनेमें णमो उवज्झायाणं मनमें पढ़ना फिर तृतीय श्वासनिःश्वासेकेन णमो लोए सव्वसाहूणं। तीसरी श्वास निःश्वाससे अर्थात् श्वासको भीतर ले जाने और छोड़नेमें णमो लोए सव्वसाहूणं ऐसी विभागकर मनमें पढ़ना इस प्रकार त्रिः श्वासनिःश्वासेकेन त्रिभिर्गाथैश्च एव पञ्च नमस्कारमन्त्रं पृथक् पृथक् उच्चार्य सप्त विंशति श्वासनिःश्वासं अवधानरूपं कुर्यात् संयमधर्मकर्ता पुरुषोत्तमः।

तीन श्वास निःश्वासेकसे णमोकार मन्त्रके तीन भाग कर-

के सत्ताईस श्वास निःश्वासोंसे नौ बार णमोकार मन्त्रको जाप्य करें। जैनेन्द्र यज्ञकर्ता श्री जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजा करनेवाला पुरुष श्रेष्ठ ऐसा करे ऐसा श्रीपद्मनन्दी आचार्य देव पूजनमें लिखते हैं अब कहिये नाक पकड़नेकी सार्थकता तो जैन धर्ममें मिलती है और नाक पकड़ते हैं अन्य मतावलम्बी वे रूढ़िसे नाक पकड़ते चले आ रहे हैं पूरी बात तो वहीं मिले जहांसे ली गई हो उसी प्रकार इन बीजारोपणके मन्त्रोंका नासमझसे अर्थका अनर्थकर वाम मार्गादि चल गये उसके केशर आदिका लगाना और मन्त्रोंका बोलना वाम मार्गियोंने योनिकी पूजा समझ ली और योनिस्थ देवता मान लिये। उसी प्रकार हमरे भाई लोग हंसी उड़ाते हैं तो आश्चर्य क्या, इसका असली अर्थ यह है कि देवता कान्तिमत्परमाणूनां समूहो देवता। दिवु धातु क्रीड़ा विजिगीषा द्युति स्तुति मोद मद कान्ति गति इतने अर्थोंमें है। उस दिव् धातुसे समूह अर्थमें त प्रत्यय हुआ है। जैसे जनानां समूहो जनता जैसे जन समुदायको जनता कहते है उसी प्रकार यहां कान्तिमान् परमाणुओंके समुदायको अर्थात् तेजोमयी विशिष्ट औदारिक वर्गणारूप कान्तियुक्त परमाणुओंके समूहका नाम यहां देवता लिया सो योनिमें सम्भवित है।

मनुष्यकी योनि सचित्ताचित्त है अर्थात् माताके शरीरमें जो माताका जीव है उस (चित्त) माने जीव सहित है इससे सचित्त है और गर्भाशयमें रक्तरज रूप पुद्गल परमाणु हैं वे अचित्त हैं, अथवा विकसोपचय परमाणु माने स्वभावसे अपने आप संचित

अर्थात् जो चमरूप नहीं परिणवे ऐसे पुद्गल परमाणु तैजो वर्गणा तथा औदारिकवर्गणा जातिके परमाणुओंका संचय इकट्ठ उन अपने आप शरीरमें बना रहता है। वह परमाणु समुदाय अचित्त है जड़ है। इस प्रकार सचित्त अचित्तका संयोग जिस योनिमें हो उसे सचित्ताचित्त कहते हैं, तो कान्तियुक्त परमाणुओंका समुदाय उस योनिमें मौजूद है। उसमें बीजारोपण करके किसी प्रबल पुण्यवन्त विशिष्ट आत्माका आकर्षण करना है भावप्रकर्ष इसीसे परमाणु समुदाय को चैतन्यवत् सम्बोधित करता है। जैसे प्रतिमा प्रतिष्ठामें प्रतिमा निर्माणके लिये जहां शिलानयन विधान है वहां लिखते हैं—

यथा कोटिशिलापूर्वं चालिता सर्वविष्णुभिः।
चालयामि तथोत्तिष्ठ शीघ्रं चल महाशिले ॥

जहां खानिसे शिला लाते हैं वहां यह कहना कि जैसे कोटि शिला नारायणोंने उठाई तैसे मैं तेरेको उठाता हूं। हे महा-शिले! तू शीघ्र चल। जैसे यहां पर उस जड़शिलामें चैतन्य आहूत भावका आरोपण करना है तब जड़ शिलाको को सम्बोधनसे सम्बोधित किया। उसी तरह यहां पर उन परमाणु-ओंमे चैतन्य आत्माका आकर्षण करना है इससे उन परमाणुओं को सम्बोधनसे सम्बोधित किया है उसीप्रकार बलादानकी प्रार्थना दूसरे मंत्रसे समझना। हम इस बीजारोपणको युक्ति संगत समझते हैं परन्तु आर्षआगममें मिले तो ग्रहण करना आगम बिना युक्ति काई कामकी नहीं। लोग यह कहेंगे

कि अंग्रेज तथा मुसलमानोंमें बड़े २ बादशाह और शाहंशाह होते हैं वे कौनसी संस्कार विधि करते हैं और इतना बड़ा भारी शासन करते हैं। यह हमने माना कि भौतिक शासन और उन्नति उत्पन्न कर सकता है पर यथार्थ धर्मका शासन और अहिंसा धर्मका पालन करते हुये सम्यग्दर्शन ज्ञान सम्यक्‌चारित्र रत्नत्रय संस्कारित श्रेष्ठ पुरुषोंसे ही होता है। धर्मनीति और राजनीतिका अविरोधसे शासन संस्कृत पुरुषोंसे ही होता है। राज्यशासन पिता-पुत्र सम राजा और प्रजामें परस्पर अनुकूलता और स्नेह होते हुये परस्पर हितके साधक जैसे गौओंका शासनकर्ता गोपाल (ग्वाला) स्वयं गौओंकी और उनके बच्चोंकी रक्षा करता हुआ बछड़ोंके हकको रखता हुआ दुधको दुहता है उसी प्रकार प्रजाकी रक्षा हक और हितको रखता हुआ प्रजामें मनुष्योंके समान पशुओंको भी प्रजा समझता हुआ प्राणी मात्र की रक्षा करता है वही धार्मिक और नीतिवान् राजा श्रेष्ठ होता है। राज्यके सप्त अंग होते हैं। मंत्री मित्र, दुर्ग, राष्ट्र, धर्म-सहित देश और प्रजा, सेना, कोश (खजाना) और राजा। इन सातों ही अंगोंमें राजा मंत्री सेना और प्रजा इनमें परस्पर प्रेम और अनुकूलता रहती है वहां ही, राज्यकी स्थिरता रहती है। इस प्रकार यथार्थ धर्मका रक्षक प्राणीमात्रका रक्षक अहिंसा धर्मका पालक नीतिवान् राजा संस्कार जन्मवाला ही हो सकता है। इसलिये संस्कारकी आवश्यकता कही। इसको साधारण मनुष्य नहीं कर सकें। कोई विशिष्ट आत्मा करनेमें समर्थ

हो सके हैं। जैसे एक कोई राज्यमान्य पंडित थे वे राजाको सदैव संस्कारोंका उपदेश करते थे और राजाको संस्कारोंके लिये बाध्य किया करते थे। इसलिये राजाने अपनी सब सन्तानों-का संस्कार किया जिससे राजाके सबही पुत्र बडे विनीत और बुद्धिमान हुये और पंडितका मकान राजमहलके सामने था सो रानी हमेशह पंडितका चरित्र देखा करती थी। वह पंडित अधिक कामी था सो दिवा मैथुन भी कर बैठता था। रानीने एक दिन देख लिया तब राजासे उलाहना दिया कि आपका पंडित तो दिन रात्रिका भी ख्याल नहीं करता और आपको निर्दिष्ट बनाया करता है। अमुक दिन स्त्री प्रसंग करना अमुक दिन नहीं करना महीनेमें एक बार करना इत्यादि और हमारे लिये विषय सुखमें बाधा देता है। तब राजाने बुलाकर पंडितसे कहा। पंडित बोले कि हम अवश्य अन्याय करते हैं परन्तु हमने जो आपको शिक्षा शास्त्रोक्त दी है उसकी परीक्षा कर लीजिये। एक दिन राजसभामें राजाने अपने पुत्रोंको और पंडित पुत्रोंको दोनोंको बुलाया। राजाके पुत्र तो आकर विनीत भावसे माता पितादि गुरुजनोंको नमस्कार करके राजाके बायें तरफ विनयके साथ बैठ गये और उस पंडितके जो लड़के आये वे आते ही पंडितकी चांदमें मारते मूंछ पकड़ते आये सो कहनेका तात्पर्य यह है कि संस्कारोंका असर तो होता ही है। अपने बालकोंको साथ रखना उन्होंकी सम्हाल रखना भगवान्के दर्शनको जाना हो साथ ले जाना पूजा कराना पढ़ाना बैठने उठनेकी विनय शास्त्रकी शिक्षा देना उनके

चौलादि यज्ञोपवीतादि संस्कार कराना इन सबका फल उत्तम ही प्रतीत होता है। अब हम इस लेखको पर्याप्त करते हैं, समय हम को कम मिलता है वक्तव्य बहुत है। यह आप महानुभावोंके समक्ष प्रार्थना इसलिये की है कि इन आपसी झगड़ोंसे धर्मको और धार्मिक समाजको हानि पहुंचती है इससे विसंवाद नहीं करना किसी एक जगह विद्वानको चाहिये कि बैठ कर विसंवाद ग्रस्त विषय वीतराग कथासे तय कर लिया करें। साधारण जनता कुछ नहीं समझती और संदेहमें पड़ जाती है। इस चर्चासागरके विसंवादसे जितने प्रतिष्ठापाठ हैं और जितने व्यवहार मार्गके ग्रन्थ हैं उन सबपर पानी फिर जाता है। फिर आप लोगोंके पास अजैन विद्वानोंके समक्ष प्रतिष्ठादिक व विवाहादिक विधि समर्थन करनेके लिये कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं या तो इन क्रियाओंको भी हेय समझ लीजिये "न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी" विचार करने की बात है कि प्रतिष्ठाके लिये तो श्रीजयसेनाचार्यके नामसे वसुबिन्दुस्वामी कृत प्रतिष्ठापाठ बतलाते हैं। प्रथम तो आम्नाय स्मरण विषय संगृहीत किया है फिर भी उससे पूर्ति नहीं होती। मन्दिरकी नींव लगानेके लिये तथा वास्तुविधानके लिये फिर दूसरोंका मुंह ताकनेकी बात है या फिर वह क्रिया छोड़ दीजिये तो कार्य अधूरा रह जाता है और विवाह संस्कारके लिये श्रीआदिपुराणमें अंश मिलता है परन्तु कङ्कण बन्धना आदिका क्या विधान समरति सप्त भांवरें आदिका क्या विधान सप्त परस्थान तो आदिपुराणमें वर्णन किये परन्तु सप्तपदी

आदिका विधान क्या है इन बातोंका सबको असुविधा है सो समझ लेना चाहिये। पूर्वापर बिना विचारे ही काम करनेवालों को कुछ ख्याल नहीं उत्तर आया तो अन्यथा नहीं मनगढंत कह दिया परन्तु आपत्ति तो पंडितोंकी है कि शास्त्र उपस्थित करो, कहां लिखा है? एक मनुष्य सब कपड़े पहने टट्टीको चला गया और फिर हाथ पैर धोकर वे ही कपड़े पहने भोजनमें बैठ गया हमने उसको कहा कि ऐसा तुम क्यों करते हो वह बोला कि दिखाओ शास्त्रमें निषेध कहां लिखा है? हमारी उमर कम थी और उतने शास्त्र हमारे देखनेमेंभी नहीं आये थे हम चुप होगये हम भी विक-ल्पमें पडगये कि शास्त्रमें कहीं देखा नहीं यदि ऐसा ही है तो फिर मुनिराजको आहार देना, नित्य कर्म ऐसा करके बनेगा फिर हमें नित्यकर्म देव पूजादिके लिये स्नान करनेका प्रमाण श्रीसकल-कीर्ति आचार्य कृत सद्भाषितावलीमें मिला और टट्टी आकर नहानेके लिये श्रीइन्द्रनन्दि संहितामें मिला। उसमें मल उत्सर्ग करके गृहस्थको स्नान करना लिखा है तो पंडितों पर पैंड पैंड पर शास्त्रीय प्रमाण मांगा जाता है। इसलिये व्यवहार मार्गके लिये त्रिवर्णाचारादि ग्रन्थोंका आश्रय लेना पड़ता है। इसीसे हमने इतना परिश्रम किया है और जहांतक हमारे विचारमें आगमानु-कूलता जची है वही अर्थसंगति और प्रसंगसंगति दिखलाई है। विद्वान् लोग इसका विचार करेंगे। इस योनिशुद्धि और गर्भाधान को अंग्रेज भी मानते हैं हमसे श्रीमान् सेठ बाबू छोटेलालजी कलकत्तावाने कहा है।

आचमन नाम मंत्रपूर्वक मुखशुद्ध करनेका है सो स्नान करके ही कर लेना चाहिये आङ् पूर्वक चमु भक्षणे धातुका आचमन शब्द बनता है, जिसका अर्थ यह होता है आसमन्तात् मुखे शुद्ध्यर्थं जलं चम्यते गृह्यते यस्मिन् कर्मणि भावे ल्युट् तत् आचमनं मंत्रपूर्वकं सब तरफसे मुखमें पवित्रता करनेके लिये मंत्र पूर्वक जल ग्रहण किया जाय उस क्रियाको आचमन कहते हैं सो पूजा करनेके पहले करना चाहिये, न कि पूजा समयमें। पूजा समयमें करनेसे हाथ ही जुठा हो जाता है पूजा ही कोई कामकी नहीं रही दूसरे वह जल भी पूजा द्रव्य है उसको ग्रहण करनेसे देवद्रव्य और निर्माल्य ग्रहण करनेका दोष लगेगा। कोई पहले आचमन करना भूल गया सो पूजा समय कर लिया होगा इससे यह पूजा समय में रूढ़ि पड़ गई। तेरापन्थने निर्माल्य दोष से यह दूषण दोष जानि परित्याग कर दिया है। श्री आदिपुराणोक्त श्रेष्ठ जैन ब्राह्मण मान्त्रिक सब क्रियायें करता है और क्षत्रिय वैश्य सावकाशवाला कर सक्ता है परन्तु राजकार्य और व्यापार करनेवाले मान्त्रिक क्रियायें दिन भर करते रहें तो राज कार्य और व्यापार कब करें और मुनिपद तथा उपोषण करनेवालेको आचमनादिकका कोई सम्बन्ध नहीं उस पदमें सदैव मुख शुद्ध है। इस प्रकारसे संक्षेपमें उपर्युक्त विषयोंका दिग्दर्शन कराया चर्चासागरमें मुनि प्रायश्चित्त, सिद्धोंकी अवगाहना दो तिहाई रह जाती है, तथा अर्हंत अवस्थामें गोमूत्र गोबरादिक अभिषेकमें नीराजनामें लेना इत्यादि विषय असंगत है और

ऋषि प्रणीत शास्त्रोंका संगृहीत विषय सब संगत है औ वसु॰ नन्दि प्रतिष्ठा पाठादि प्रतिष्ठा ग्रन्थ यशस्तिलक चंपू जिनेन्द्र प्रतिष्ठा में प्रतिमाओंको आकर शुद्धिमें धातुपाषाण दोष निवारणार्थ व्यवहारमें शुद्धिमें जोतर वसुनन्दि प्रतिष्ठा पाठादिमें विहित है आदिपुराणजी श्रीज्ञानार्णवजी आदि सब ऋषि प्रणीत ग्रन्थ है इनको कट्टर तेरहपंथी श्रीमान् पंडित पन्नालालजी दूनीवालोंने भी विद्वज्जनबोधकमें प्रमाण कोटिमें लिये हैं । संहिता ग्रन्थों को श्रीमान् बैरिस्टर साहब चम्पतरायजीने "जैनला"में प्रमाण देनेको लिये हैं । इतना अवश्य है कि पंडित पन्नालालजी आदि विद्वानोंने संहिता ग्रन्थोंमें जो विषय आर्षप्रणीत आगमानुकूल नहीं प्रतीत हुआ उसको ग्रहण नहीं किया और पंडित फतेलाल॰ जीने जैनविवाहपद्धतिमें कन्यादान मन्त्र पुण्याहवाचन आदि विषय त्रिवर्णाचारादि संहिता ग्रन्थोंसे लिया है । हवन कुन्डका प्रमाण बनानेकी विधि वेदी बनानेकी विधि आदिसंहिता ग्रन्थोंसे लिया है । इसलिये इन संहिता ग्रन्थोंकी भी यथायोग्य है ग्राह्य हैं । सपरिकर पूजनमें प्रतिष्ठादिक् कार्योंमें देवोंका आह्वान नादि सत्कार चतुः संघ श्रावक श्राविकादिके समान श्रीजिनेन्द्र देवके अलौकिकधिशतिशय दिखानेके लिये हैं न कि उनको सर्वो॰ परि माननेके लिये । उन्ही देवोंको कार्यमें नियुक्त्ता इन्द्र ए पुरुष इस प्रकार करता है कि यह धर्म कार्य है इसको आप भी साध्य करो आप भी सहधर्मी हो इस प्रकार आज्ञा करता है और आये सहधर्मि भाइयोंका स्वागत सत्कार भी करता है और

मिथ्यादृष्टि उनको पूज्य समझ सत्कार करता है इतनाही भेद है यह प्रतिष्ठादि कार्योंमें किया जाता है यह भी विषय प्रतिष्ठा पाठोंमें है इससे लिखा है। दानके विषयमें सब तरहसे विशेष दान औषधि शास्त्र अभय आहार ही है, परन्तु सहधर्मी भाईको धर्ममें स्थिर करनेके लिये जैसे आजीविका निमित्त उसे रुपयों की पूंजी देकर कोई दुकान करा दे तो वह भी उपकारार्थ समझा जाता है उसी प्रकार अपने सजातीय भाई को कन्या देते हैं जैसे अपने दामाद और कन्याको विवाह समय हाथी घोड़ा रुपया वस्त्र गहना सभी कुछ देते हैं इसको भी उपकारके लिये दान समझते हो उसी प्रकार बीसपंथ आम्नाय वाले भट्टारकजीको भगवान्के अभिषेकके लिये तथा भट्टारकके भोजनमें दूध निमित्त गौ देदे तो गौदानका विधान नहीं है और न जैनमतमें गौदान कहा है। यह लिखनेवालेकी लेखनशैलीकी गलती है। अभिषेकमें श्रीआदिपुराण पर्व ४० में जन्म संस्कार समय श्री सिद्धप्रतिमाका अभिषेक लिखा है और उस गन्धोदकसे बालक को सिञ्चन कर शिरः स्पर्श करना लिखा है—

जन्मसंस्कारमन्त्रोऽयमेतेनार्भकमादितः ।
सिद्धाभिषेकगन्धाम्बुसंसिक्तं शिरसि स्पृशेत् ॥११०॥

इससे चन्दनकेशरमिश्रित जलसे अभिषेक सिद्ध प्रतिमा-का लिखा है सो चन्दन केशरमिश्रितसे अभिषेकका विधान तो आदिपुराणमें है और पञ्चामृतका नहीं और पद्मपुराणादिमें पञ्चामृताभिषेक लिखा है सो तेरहपन्थी तो पञ्चामृताभिषेक

कराते नहीं और बीसपंथी पंचामृताभिषेक करते हैं परन्तु २ आम्नायके जैसे अतिशयोंमें कमजोरा हुई भाव लगे तो करे। परस्पर झगड़ा नहीं करना। भगवानमें कुमकुम आदि नहीं होना आचार्योंका कथन दोनों रूपसे है आचार्योंका मतभेद है जिससे परिणामोंकी उज्ज्वलता हो और कोई विसंवाद न उठे वही कार्य करना श्रेष्ठ है और भगवानके नित्य नियम पूजनमें भी पूर्व उत्तर मुख खड़े होना जहांतक बने वहांतक पूर्व उत्तर मुख खड़े हो कर पूजन करना। मुख्यता पूर्व उत्तर दिशाओंकी ली है। श्रीपद्म-पुराणमें हरिवंश पुराणमें तथा आदिपुराणमें दीक्षा लेते समय पूर्व-उत्तर ही दीक्षा लेना लिखा है इससे जाना जाता है कि उत्तम कार्य पूर्व उत्तर दिशासे हो किया जाता है।

परमपूज्य मुनिराजको वनोंमें ही रहना चाहिये उत्सर्ग निर्णय यही सही है परन्तु कमजोरोंसे तथा इस कलिकालमें जिनधर्मसे द्वेष रखनेवाले बहुत हैं जो बिना कारण ही जैनधर्मके विध्वंस करनेमें लगे रहते हैं ऐसे दुष्ट स्वभाववाले "कलि" सदृश मनुष्योंसे घिरा हुआ यह देश है। ऐसे क्षेत्रमें जहां सबके महात्माओंकी और धर्मकी रक्षा होती होवे उसी क्षेत्रमें रहना उचित है, परन्तु इस समय प्रत्येक जगह यही विचारना चाहिये कि वर्तमान समयमें हमारे भाईयोंको चारित्रगुणको सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र मोक्षका मार्ग है उसमें सम्यग्ज्ञान ज्ञानसहित चारित्रकी पूर्णता ही मोक्ष है उस चारित्र को इस युगमें जलांजलि दी जाती है क्योंकि श्रीमान् भाइयोंको

स्वराज्यके विषयमें जो कार्य किये सो सब अच्छे किये परन्तु ऊंच नीच सबका खानपान एक कर दिया यह अच्छा नहीं किया। यद्यपि आत्मत्व जातिके नाते सब प्राणी एक हैं तथापि अपने अपने पूर्व बांधे (किये हुये) कर्मोंके उदयसे अनेक जातिके परिणाम होते हैं अनेक अनेक असंख्यात और अनन्तानन्त योगस्थान और कषायाध्यवस्थान होते हैं जिनसे जीवोंके उज्वल और मलिन अनेक जातिके परिणाम होते हैं। उन उज्वल श्रेष्ठ परिणामोंके कारण जीव उच्चकोटिका समझा जाता है और मलिन परिणामोंके द्वारा नीच समझा जाता है। राजनीति और धर्मनीतिमें उज्वल परिणाम वाला उज्वलताकी रक्षा निमित्त उज्वल समझता हुआ भी मलिन परिणाम वाले जीवों पर दयादृष्टि और करुणा भाव रखता हुआ उनके हितकी बात चाहता हुआ मैत्री भाव रखे और मलिन परिणाम वाला अपने मलिन परिणामों को नीच जानता हुआ अपने परिणामोंकी उज्वलता चाहता हुआ मैत्री भाव रक्खे तो स्वराज्यमें चारित्रगुण कभी बाधक नहीं हो सका एक मा बापके अनेक लड़के होते हुये बड़े छोटे आपसमें छोटे बड़ोंका अदब रक्खे तो आपसमें एक दूसरेके हितमें कभी बाधक नही होते और परस्परमें एक दूसरेके साधक होते है इसी प्रकार चारित्र धर्म पालते हुये परस्पर कषाय क्रोधादि भाव और स्वार्थान्धता छोड़ परस्पर बर्ताव रक्खे तो स्वराज्यमें कोई बाधा नहीं आ सकी प्राणीमात्रका हित चाहना ही धर्म है परन्तु कषाय क्रोधादि भाव और हिंसादिक पंच पाप प्रवृत्ति रूप मलिनता आई

नहीं और मिथ्यात्व कषाय क्रोधादि भाव तथा हिंसादि पापरूप मलिनता नीचता को नीचता मलिनता न जानी न श्रद्धान की उसीको उज्वलता समझी श्रद्धान की तो वह मलिन भाव उज्वल कब हो सक्ता है। वह मलिन भाव रखने वाले पुरुष उज्वल भाव रूपभावको ईर्षाभावसे बराबरी कर बराबर करना चाहते हैं जो वे मलिन भावको ही उज्वल भाव मानकर मलिनता फेलायेंगे और अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्यादि सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र उज्वल भावोंको अपने रूप न परिणमवेंगे तब उज्वल भाव ही बिगडेगा।

सदैव उच्च भावही बिगड़ता है दूधही फटता है मट्ठा नहीं जब मलीन भावको मलीन स्वीकार करता हुआ उज्वल भावको चाहता है उसका सुधार होता है। जो सामर्थसे ईर्षाभावसे उज्वल भाव रूप उच्चतापर मलीनताका एक अंश भी नहीं परित्याग करते हुये एकदम आक्रमण करना चाहते हैं दोषोंको छोड़ते हुये गुण नहीं ग्रहण करते किन्तु दोषोंको ही गुण बनाने की कोशिश उपाय कर रहे हैं वहां खेरियत नहीं राजनीतिज्ञोंको धर्म पर आक्रमण नहीं करना चाहिये हमारे सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र रूप धर्म रहते हुये हमें स्वराज्य मिले तब हमारे लिये स्वराज्य है और धर्मही नहीं रहा तब स्वराज्य केसे? तब तो यह कहना चाहिये कि हमारे धर्मपर भी पराजय हो गया अर्थात् हमारे धर्मकी भी स्वतन्त्रता नष्ट होगई। नीच भाव गया नहीं सबका खान पान एक होगया तो हमने उज्वल भाव छोड़ नीच

भोज धारण किया तब उन्नति हुई कि अवनति। पहिले गोत्र माने जाना चाहिये सो तो गया नहीं तो बराबरी कैसी? इसलिये राजनीतिज्ञोंको राज्य शासनमें हित सबका देखना है परन्तु धर्म्म में नहीं। धर्म्ममें जो जैसा जिसका कर्तव्य है मात्र हैं वैसा ही पात्र समझना चाहिये। यदि सबका खान पानादि ही एकता का कारण है तो भारतवर्षको छोड़ अन्य राष्ट्रोंमें क्यों लड़ाई है, होती है। वहाँ राज्य विप्लवादि क्यों होते हैं? वहाँ तो खाना पानादि सब एक हैं फिर क्यों अनेकता होती है? मेरे महानुभावों! अनेकताका कारण क्रोधादि कषाय और हिंसादि पाप तथा स्वार्थान्धता है। इसलिये आप लोग धर्म रखना चाहते हैं तो खानपानादि एक कर चारित्र गुणको नहीं बिगाड़ देना। कोई यह कहे कि सबका खानपान एककर सबका उज्वल चारित्र हो जायगा सो कैसे हो सक्ता है। जहां उज्वलता का परित्यागकर मलिनताका ग्रहण है। संसारमें मलिनता बड़ी कठिनतासे आती है और उज्वलता जानेमें देर ही नहीं लगती। किसी धर्मज्ञ नीतिकारने कहा है कि—

आरोप्यते शिला शैले यथा यत्नेन भूयसा।
निपात्यते सुखेनाधस्तथात्मा गुण दोषयोः॥

जैसे बड़ी शिला पर्वत पर बड़ी कठिनतासे चढ़ाई जाती है और उसको ऊपरसे नीचे गिराने में क्या लगता है दो चार धक्कों से तुरन्त नीचे आजाती है। इसी प्रकार हमारे भाई लोग समझ लें जैसे एक मुसलमान भाईके साथ हम खा लेवें तो अनेक

-खानपान मांसादि है सो हम अपने मतसे भ्रष्ट हुये और वे जो सर्वभक्षी हैं सो उन्होंने तो मांस त्याग कियाही नहीं इससे हमारे भाइयोंको खानपानमें सावधान रहना । अब कठिन समय आता जाता है और अपनेको दूसरोंके सामने यह भी नहीं डींग मारना कि साहब ! हम तुम्हारे साथ नहीं खाते । हम उच्च हैं। क्योंकि डींग मारना कषायसे होती है सो कषायसे कभी धर्म नहीं होता । कषाय ही अनेकताका कारण है अपने धर्मे रक्षा करना अपना कर्तव्य है । यद्यपि यह विषय विषयान्तर है कुछ उपयुक्त समझ संक्षिप्तमें लिख दिया है । हमने यह परिश्रम चर्चा-सागरके खण्डन मण्डन केलिये नहीं किया है । चर्चासागरमें जो बातें असङ्गत थी जिनमें खोटें थीं उनको भी दिखाई और भी कई बातें हैं जैसे क्षपक श्रेणीमें संहनन नहीं यद्यपि अयोग गुण-स्थानके अन्त्य समयमें सर्व कर्मका क्षय हुआ, वा क्षपक श्रेणी में संहनन रहितपना संभव है होता है, परन्तु साधारणमें तो संशयजनक ही है । सब क्षपक श्रेणीमें कहां । ऐसी बहुतसी बातें रहगी गई और जिनको व्यर्थही असंगत दिखलाई थी खोटे नहीं थीं उसका अनर्थ करनेसे भूलहो रही थी वह भी दिखाया परन्तु मुख्य प्रयास प्रतिष्ठापाठादि ऋषि प्रणीत ग्रन्थोंकी और वर्तमानमें उपयोगी संहितादि ग्रन्थोंकी रक्षा निमित्त ही हमने यह प्रयास किया है । अपने ज्ञानमें हमने सर्वज्ञवीतराग हितोपदेशी अर्हन्तदेव प्रणीत आगमानुकूलही प्रतिपादन किया है । यदि प्रमाद वश व अज्ञान -वश कोई अन्यथा कथन हो गया हो तो विशेषज्ञ विद्वान हमारी

गलतीपर क्षमा करेंगे क्योंकि हम छद्मस्थ हैं अल्पज्ञ हैं। अल्पज्ञों से भूल होना साधारण है और इकट्ठा समय मिला नहीं है थोड़ा २ लिखा है विशेष दोहरानेका भी समय नहो मिला है। इसकारण कोई प्रसंग संगति में त्रुटिहो तो वह भो क्षमा करेंगे और कोई अन्यथा पदार्थ प्रतिपादन होगया हो तो हमें प्रेम-भावसे सूचित कर आभारी करेंगे, ज्यादा क्या प्रार्थना करें।

परस्यतुच्छेपि महानुरागो महत्यपि स्वस्य गुणे न तोषः।
एवं विधो यस्य मनो विवेकः किंप्रार्थ्यते सोत्र हिताय साधुः ॥१

जिसके दूसरेके थोड़े गुणोंमें भी अनुराग है और अपने महान् गुणों में सन्तोष नहीं है इसप्रकारका जिन महानुभावों का विवेक है वे क्या अपने हितके लिये प्रार्थना किये जाते हैं? वे महानुभाव स्वयंही विना प्रार्थना ही स्वपरहित करते हैं।

अलं पल्लवितेन।

श्रीमदर्हतांचरणचञ्चरीकः श्रीदिगम्बरजैनधर्मानुयायि ग्वालियरप्रान्तवर्तिभिण्डाभिधवास्तव्य—वर्तमानकलकत्ता वास्तव्यः यदुवंशो लम्बकञ्चुकान्वये चन्द्रवर्योत्थः। भवतां सहधर्मिणां दासानुदासः झम्मनलालजैनतर्कतीर्थः। क्षन्तव्यो भवद्भिः। श्री १००८ श्रीवीर सं० २४५१ विक्रम सं० १९८६ ता० ७।११।३२